संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० ५८

विद्याधर से विद्यासागर

(उपन्यास)

लेखक

सुरेश जैन 'सरल'

जबलपुर

प्रकाशक

जैन विद्यापीठ

सागर (म० प्र०)

विद्याधर से विद्यासागर

लेखक : सुरेश जैन 'सरल'

संस्करण : २८ जून, २०१७

(आषाढ़ सुदी पंचमी, वीर निर्वाण संवत् २५४३)

आवृत्ति : ५०००

वेबसाइट : www.vidyasagar.guru

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

जैन विद्यापीठ

भाग्योदय तीर्थ, सागर (म० प्र०) चलित दूरभाष ७५८२-९८६-२२२

ईमेल : jainvidyapeeth@gmail.com

मुद्रक

विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स

प्लाट नं. ४५, सेक्टर-एफ , इंडस्ट्रियल एरिया गोविन्दपुरा

भोपाल (म० प्र०) ९४२५००५६२४

आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थाई बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को श्रृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई-बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार-निहार कर चल पड़े घर-द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना कराकर हमेशा-हमेशा के लिए भव-भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।

महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से अनेक भाषाओं में अनुदित मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी-आध्यात्मिक-महाकाव्य का सृजन हुआ। जिस पर अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामतः मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी० लिट्०, पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गई। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य

का वाचन कर अचंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव विश्राम लेने का नाम ही नहीं लेते।

यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वांसें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, आचार्य समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंकदेव, स्वामी विद्यानंदीजी, आचार्य पूज्यपाद महाराज जैसे श्रुतपारगी मुनियों की श्रृंखला को ही गुरुनाम गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरांत आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमण संस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वतवर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

आचार्यश्री के जीवन चरित्र सम्बन्धी साहित्यिक शैली में जन सामान्य को समझने में आने वाला वह उपन्यास है जो सर्वप्रथम रचा गया और इसकी लोकप्रियता सबसे अधिक हुई। विद्याधर से विद्यासागर कैसे बने, यह सम्पूर्ण जीवनवृत्त पढ़कर पाठक अभिभूत हो जाते हैं और उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त करते हैं इसलिए इस कृति का प्रकाशन संयम स्वर्ण महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष की अनुभूति हो रही है।

समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

गुरुचरणचंचरीक

लेखकीय...

कैसे कहूँ यह लेखन श्रेष्ठ है? कैसे कहूँ–श्रेष्ठ नहीं! यह सामान्य भी नहीं, विशेष भी नहीं, यह है वह, जो है। सरल है, सहज है, हृदय से स्फुरित है, मस्तिष्क से अनुगुंजित है। बस है एक मुनि के पथ जैसा। मुनि–पंथ जैसा और सुने, मुनियों का पंथ होता है एक सरिता जैसा। हाँ बिलकुल नदी जैसा। नदी जब जन्म लेती है तो कोई उसका बहाव, लकीर खींचकर तय नहीं करता। वह किसी के द्वारा खींची गई लकीरों–लकीर बहना भी नहीं चाहती। वह तो स्व–वेग से निकलती है किसी पर्वत, किसी झील, किसी ताल या किसी कुण्ड के हृदय–आत्मा को वेध कर और बिना किसी प्रकाश के बढ़ती जाती है, बढ़ती जाती है। पहले सूत–सी धारा, फिर झरना, फिर जलप्रपात, फिर सरिता और फिर सागर होते हैं उसके स्वरूप। वह पथरीले पथ पर चल कर कल–कल ध्वनि करती है, जैसे अपने देव को अभी–अभी रचित कोई भजन सुना रही हो। तो मैदानी भूमि पर शांति से बहती है, जैसे कोई भक्त अपने इष्ट की मूक–आराधना कर रहा हो। वह धारा बहती रहती है और अंत में किसी 'सागर' में लीन हो जाती है। जैसे कोई श्रेष्ठ श्रावक गृह–त्याग कर किसी धर्म सभा में पहुँच जाता है। इस बीच उससे कितनों ने लाभ लिया या किस किसने उसे लाभ दिया का ध्यान भी नहीं रखती वह सरिता। उसका लक्ष्य होता है सागर। उसका गंतव्य होता है सागर। वह सागर हो जाना चाहती है। किसी की आलोचना उसका बहाव नहीं बदल सकती। किसी का क्रोध उसकी दिशा नहीं बदल सकती। किसी का मस्तिष्क उसकी आत्मा नहीं बदल सकता, किसी का वैभव उसकी दशा नहीं बदल सकता, वह बिना बदले बहती रहती है। सरिता। मुनि–पंथ। लेखनी।

कोई यंत्री/अभियंता/स्थापत्य/कलाविज्ञ बाँध बाँधकर नदी का स्वरूप बदल सकते हैं, उसे अधिक उपयोगी बना सकते हैं, उसके अधिकांश जल

को स्थान विशेष पर एकत्र कर सकते हैं, पर जल का नाम और काम नहीं बदल सकते। उस जल से उन्हें प्यास मिटानी ही होगी। सिंचाई करनी ही होगी, विद्युत पाना ही होगी। वे यह सब न पा पावे तो दोष नदी को नहीं जाता, दोषी होता है बंधान बनाने वाला।

विचारक, मनीषी, सुलेखक, सुपत्रकार, समालोचक इस कृति पर सार्थक बाँध बाँधे तो बात बने। कोई पुल बनावें तो इस पार से उस पार का दृश्य देखना सहज हो उठे। सुनो, इसे बिना बाँध, बिना पुल के छोड़ दें तो भी ठीक है, कम से कम इसकी मूल श्री शोभा तो होगी। जंगलों में ऊबड़-खाबड़ धरती पर बहने वाले झरने में लोग प्राकृतिक सौन्दर्य खोज लेते हैं तो कागजों पर बहने वाली इस अक्षर-सरिता में भी कुछ अन्वेषण करें। सच, इसमें वह सब कुछ है जो नद-नदियों में होता है। हाँ किसी की प्यास तुष्ट करने की क्षमता, किसी के सूखे खेत सींच देने योग्य जल राशि, किसी के अंधेरे बंगले में वास्तविक जगमगाहट प्रकट कर देने वाली ज्योति और इसके अलावा कुछ और भी।

यह साहित्यिक कृति नहीं है, पर यह लेखन पूर्णरूपेण साहित्यिक है। यह 'सबरस' नहीं है, एक रस है। सुनो, आदमी जब धुन में आ जाता है तो उसे मात्र एक रस की जरूरत रह जाती है। वही रस है इनमें। आत्म-प्रकाश का रस। आत्म-क्रीड़ा का रस। आत्म-कल्लोल का रस। उस रस को गुणीजन 'आत्मानन्द' कहते हैं। आत्मा का आनंद चाहने वालों के लिए है यह रस-कलश। यह कृति।

मैं कब कहता हूँ कि इस कृति से या इस प्रकार के लेखन से मुझे कुछ लेना है? ऐसे कृतिकार की कुछ अभिलाषा न होती हो, यह नहीं कहता। होती है बराबर। मेरी भी अभिलाषा है। सुनेंगे आप? पूज्यश्री के अक्षर उठाकर अपना अभिप्राय बतलाए देता हूँ -

लोकेषण की चाह ना, सुर-सुख की ना प्यास।
विद्यासागर बस बनूँ, करूँ स्वपद में वास॥

आपके लिए भी उनके अक्षर-पुष्प समय पर खिले हैं मनोद्यान में -

रत्नत्रय में रत रहो, रहो राग से दूर।
विद्यासागर तुम बनो, सुख पावो भरपूर॥

कहने को इसे एक सामान्य-उपन्यास नहीं कहा जा सकता। यह उपन्यास है भी नहीं। इसमें उपन्यास के जैसा ताना-बाना भी तो नहीं है, फिर कैसे यह उपन्यास? सुनो यह है एक सु-दीर्घ कथा। लोक-कथा नहीं। पौराणिक-कथा भी नहीं। न वि-कथा। न तथा-कथा। मात्र कथा। एक आधुनिक सहज कथा। एक साधुकथा/यथा-कथा यही संज्ञा दी है मेरे मानस ने इस समूची रचना की। महागाथा की।

एक नटखट बालक विद्याधर, एक महान् संत विद्यासागर बन गया। है यह उसके संत बनने की कथा। मुनि पर्याय धारण करने की कथा।

प्रतिदिन सविनय, चाह से, इसको पढ़ तू भव्य।
सुरसुख, शिवसुख, नियम से, पा ले अक्षय द्रव्य॥

वह महान् तेजपुंज एक भारतीय माँ के गर्भ में आया और सारे भारत को गौरवान्वित कर बैठा। भारत की सम्पूर्ण पुत्रवती-माताओं को गर्वानुभूति दे बैठा। यहाँ की माताओं को 'ऐसे लाल' होते हैं, की गर्वानुभूति।

सुनो यह व्यक्ति की कथा नहीं है, व्यक्तित्व की है। एक ऐसे व्यक्तित्व की जिसकी 'साधु' बनने की इच्छा-शक्ति से वह तो वह, उसका पूरा परिवार साधु बन गया। अब वह सारे देश को साधु बना रहा है। घर पीछे एक साधु/त्यागी पैदा करना चाह रहा है देश के वातास में। यहाँ साधु का अर्थ समझ लें। साधु माने वह व्यक्ति जो मुनि नहीं है, पर जिसमें मुनि होने की सकल संभावनाएँ हैं। साधु माने अत्यन्त सभ्य-सुसंस्कृत- शिष्ट धर्मज्ञ श्रावक। साधु के ठीक बाद की मनःस्थिति को मैं मुनि कहता हूँ।

मेरी कथा का वह व्यक्तित्व श्रावक से साधु, साधु से मुनि और मुनि से आचार्य तक विकास करता है और सारे देश में अपने त्याग, तप और वाणी के बल पर श्रमण-परम्परा की न केवल रक्षा करता है, वरन् उसे फलता-फूलता भी देखना चाहता है। इस फलने-फूलने की क्रिया को वह स्वतः एक माली की तरह सम्पन्न करता चलता है शनैःशनैः मौसम और

पौधों का ध्यान रखता हुआ।

विद्याधर की कहानी से प्रारम्भ यह कृति विद्यासागर की कहानी तक जाती है और चलती रहती है। यह हिन्दी साहित्य की एक ऐसी रचना है जो अभी पूर्ण नहीं हुई, चल रही है। चलती रहे वर्षों-वर्ष कामना है। कोई श्रावक इसका अन्त खोजने का प्रयास न करें, यह एक अंतहीन कृति है। खण्ड-खण्ड लिखे जाने के बाद भी इसका अन्त नहीं है, किसी खण्ड में नहीं है। यह प्रथम खण्ड है, मगर यह शब्द यात्रा हर खण्ड से शुरू होती है, और हर खण्ड में, आगामी खण्ड में लिखे जाने के लिए, निरन्तर है। यह शब्द-धारा है, धारावाहिक कथ्य है, अंतहीन धारा, सो खोजे न कथान्त।

यह चारित्र परक चरणानुयोग के अंतर्गत एक उपग्रन्थ है। एक ललित-कथ्ययुक्त पुस्तिका। इसमें-पहले गृहस्थ और फिर बाद मैं मुनि के चरित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा का विशद वर्णन है, यह चरणानुयोग ही तो है, आपके सम्यग्ज्ञान का एक अंग।

रत्नकरण्डक-श्रावकाचार के द्वितीय परिच्छेद में एक श्लोक क्रमांक ४५ है-

गृहमेध्यनगाराणाम् चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्।
चरणानुयोगसमयं, सम्यग्ज्ञानं विजानाति॥

सम्यग्ज्ञान गृहस्थों एवं मुनियों के चरित्रों की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारणभूत शास्त्रों को चरणानुयोग-शास्त्र मानता है।

लेखक एक है/होता है, पाठक अनेक हैं/होते हैं, कई तो लेखक से अधिक विद्वान् होते हैं, अतः कोई पाठक इस पुस्तक का अपनी तरह से विवेचन कर इसका अधिक उपयुक्त संज्ञाकरण करना चाहे तो वह स्वतंत्र है, उसके चिन्तन से कथ्यकार को कुछ नया सुनने/समझने मिले तो वह धन्यवाद का पात्र होगा ही।

आत्मकथा तज क्यों करो, नित वि-कथा निस्सार।
पय तज, पीते विष भला, क्यों हो निज उद्धार॥

मुझमें नवधा भक्ति के सम्पूर्ण गुण स्यात् नहीं हैं, जितने हैं उतनों से

ही मैं वह कर रहा हूँ। एक कक्ष में एक दीप रखने से कार्य चल जाता है– किसी तरह, इसका अर्थ यह नहीं कि वहाँ अतिरिक्त दीप न रखे जावें। वे जितने अधिक हों अच्छा है, पर पहला दीप रखने का अपना निराला गौरव है। भक्ति का पहला गुण जाग जाए तो शेष भी शनैः शनैः जाग जाते हैं। आप मेरे कथन को विचित्र कहेंगे क्योंकि मैं यह कहने जा रहा हूँ कि इस पुस्तक के लेखन में ही मैंने नवधा भक्ति सम्पन्न करने का सुप्रयास किया है।

धर्म के पंथ निराले हैं, हैं न? तो सुनो, इसे एक कृति न माने, मान ले मेरा व्यक्तिगत धार्मिक–कार्य, यह सामायिक–पाठ है, मेरे द्वारा मेरे लिए। मुझे विश्वास है कि दुनिया भर की लफ्फाजी वाली कथा–कहानियाँ न लिखकर, यह जो लिखा है वह मुझे समयसार का सुख देता है, ऐसे लेखन से मैं यह भव सुधार सकता हूँ, नवभव का प्रशस्त पथ पा सकता हूँ।

इसे लिखते समय मैं अपने आप में लीन हो सका हूँ, इसे लिखते समय किन्हीं अदृश्य किरणों ने मेरे मानस को सुप्रकाशित किया है, सो यह कुछ नहीं तो 'गुरु–वंदना' तो है।

इसे पूज्य विद्यासागरजी ने एक स्थान पर सहज ही लिखा है–

शास्वत निधि का धाम है, क्यों बनता तू दीन ?
है 'उसको' बस देखले, निज में होकर लीन॥

तो, जो आप से बनता है, वह मुझसे नहीं बनता, जो मुझसे बनता है, वह आपसे नहीं बनता, यह कैसी बनक बनी है? चलो हम एक दूसरे के साथ होलें–जो आपने अब तक बनाया है, उसे मुझे आदर से देखने दें, समझने दें और जो मैंने बना दिया है, वह आपके लिए ही है माने। पूज्यश्री के शब्दों में

रवि सम पर उपकार मैं, करूँ समझ कर्त्तव्य।
रखूं न मन में मान–मद, सुन्दर हो भवितव्य॥

वास्तव में मैं आपकी दृष्टि में लेखक हो सकता हूँ, लेखक माने कवि/ कथाकार/व्यंगकार/उपन्यासकार वगैरह वगैरह। इनमें से आप चाहे

जो 'लेबल' उठाकर मुझ पर लगा सकते हैं, आप स्वतंत्र जो हैं। परन्तु हूँ मैं कुछ नहीं। बस एक विद्यार्थी। एक सहज श्रावक। जिसकी श्रद्धा है मुनि-चरणों पर। विद्यासागर के चरणों पर। उनके विषय में लिखते हुए मैंने गल्तियाँ भी की होगी। बहुत कुछ हिस्सा लिखने से छूट गया होगा। जो लिखा है उससे आप पूर्ण तुष्ट शायद न हो पाये। यह मेरी अंजलि में रखा गया नन्हा पुष्प है किन्तु पूर्ण खिला हुआ अपने दिगम्बर देवता के लिए।

पूज्य श्री के एक दोहे से मैं अपने मन की बात कह रहा हूँ-

बिन रति-रस चख जो रहे, निज घर में कर वास।
निज-अनुभव-रस पी रहे, उन मुनि का मैं दास॥

अंजुलि के पुष्प को देवता के चरणों तक जाने दें। न देखे कि वह गुलाब का है या गेंदा का। बस एक श्रद्धापूर्ण-पुष्प है।

ऐसे पुष्प और खिलें, इससे अधिक पुष्ट और सुवासित होकर खिलें, हर अंजलि में खिलें, मेरी अभिलाषा है। कब कहता हूँ इसमें त्रुटियाँ नहीं हैं। हैं, आप तो श्रीमान् हैं, सुधार लें, अपने तईं सही कर लें।

सुनो लेखन में त्रुटियों के लिए या अपूर्णता के लिए पूज्य विद्यासागरजी तक ने अपनी रचनाएँ जनता की अदालत में रखते समय एक ही बात कही है, वही बात, ठीक उन्हीं के शब्दों में, मैं कह रहा हूँ-

प्रस्तुत कलेवर में आचार्यश्री के प्रारंभिक जीवन पर दृष्टि रखी है, सन् १९४५ से १९६९ तक। कहें उनके गर्भकाल से चलकर मुनि - दीक्षा तक की वय को लेखनी चित्रित करती चली है। यह २३ वर्ष की एक यात्रा है जो उनके मुनि होने के बाद द्वितीय चातुर्मास तक चलती है। लेखन-सूत्र प्राप्त करते समय मेरे कार्य को जिनने सहज कर दिया उनका नाम कैसे भूल सकता हूँ।

सदलगा के उत्तम श्रावक श्री महावीर प्रसाद जैन (अष्टगे) ने जो सूत्र बतलाए थे, उनसे आचार्यश्री के जीवन के वे कोमल और संवेदनशील क्षण मैं पकड़ सका, जब वे माँ के गर्भ में थे, फिर जब उनने जन्म लिया, फिर जब किलकारी भरने लगे, फिर जब कढुर कर चलने लगे, फिर जब

खड़े होने लगे, फिर जब दो चार कदम चल गिर पड़ते मूकमाटी पर, फिर जब घर से बाहर तक खेलने जाने लगे, फिर जब चाकलेट लेने दुकान तक जाने लगे, फिर ... गो[1] यह कि उनकी शिशु अवस्था और किशोर अवस्था की सूत्र-श्रृंखला आदरणीय महावीर प्रसाद जी के शब्दों के आधार पर शिल्पित कर सका हूँ, उनका आभार काश शब्दों में व्यक्त कर पाता।

युवा अवस्था की चर्चाएँ सुनने मिली परम पूज्य योग सागर जी महाराज के मुखारविंद से। कहें मुझे मिला उन सबका सहयोग, सबका दिग्दर्शन जो कहीं बहुत गहराई से जुड़े रहे हैं पूज्यश्री से।

परम पूज्य क्षमासागर जी के संकेतों ने कई ऐसे सूत्रों को जन्म दिया कि यदि वे उनसे न मिलते तो कहीं न मिलते। परम पूज्य गुप्तिसागर जी ने भी अपने तईं क्या कुछ नहीं बतलाया, दिया उनने भी बहुत।

तुम तो अविकारी हो प्रभुवर, जग में रहते जग से न्यारे,
अतएव झुकें तब चरणों में, जग से माणिक-मोती सारे।

इस कथा लेखन में जिनके वचन, हाँ जिनके संस्मरण बीजाणु का कार्य करते रहे पूरी लेखनी में उन परम पूज्य समतासागरजी महाराज का मैं सदैव ऋणी रहूँगा। उनके वात्सल्य भरे जीवन्त उद्‌बोधन मुझे कभी जबलपुर तो कभी पनागर, कभी शहपुरा तो कभी गंजबासौदा में सुनने मिलते रहे और मेरी लेखनी नित-नित-नये शब्द-चित्र रचती चली गई। विश्वास माने यदि पूज्य समतासागर जी ने अपना परम सात्विक-समय न दिया होता तो यह कथा आपके समक्ष पहुँच ही न सकती थी।

परम पूज्य समयसागरजी ने स्पष्ट रूप से इस कथा का कोई ताना अपने सूत्रों पर नहीं बंधने दिया, मगर उनके समीप बैठने से ऐसा लगता था कि वे 'कथा-दृष्टि' दे रहे हैं कहीं बहुत भीतर ही भीतर। जब भी उनके पास बैठा, घर पहुँच कर कुछ नये पृष्ठ अवश्य लिखे गये।

यही हाल अन्य मुनि महाराजों का रहा। वे खुलकर कोई सूत्र न दे सके, पर जब तक उस दौरान वार्ता की तो उनसे ऐसे सूत्र पकड़ने में सफल

---

१. गो = दृष्टि

रहा जिनसे आगामी खंडों का स्वरूप गढ़ने में मदद मिलेगी।

परम पूज्य सुधासागरजी महाराज, परम पूज्य स्वभावसागरजी एवं परम पूज्य समाधिसागरजी लिखते समय अपने आशीष से लेखनी को सम्बल देते रहे बराबर, उनके वात्सल्य से भीगने पर कलम की स्याही अधिक से अधिक पन्नों को सजाने की शक्ति देती रही है रोज-रोज।

भाग्यशाली हूँ। मुझे हर मुनि-त्यागी ने सहयोग दिया है इस कथा को लिखते समय। पूज्य ऐलक निशंकसागर जी, पूज्य ऐलक करुणासागर जी एवं पूज्य ऐलक दयासागर जी ने अपने ओठों से जो मुस्काने दी हैं, उनसे लिखते समय देह में ताजगी का संचार होता रहा है। पूज्य अभयसागर जी ने मुस्कान के साथ-साथ कुछ वार्ताओं में ऐसे सूत्र छोड़े मेरे मानस पर कि उन्हें आगामी खण्डों के लिए अभी से शब्दबद्ध कर प्रसन्न हूँ। ऐसे युवा तपस्वियों का निश्छल प्रेम, वात्सल्य, कृपा और आशीष जिस लेखनी को मिले हो उसे खुशियाँ रखने के लिए जगह नहीं बची है, हृदय-मानस के किसी भी कोने में। चित्त उनके स्वभावों और सु-भावों से आज तक खिला-खिला है।

उन्हें नमन। नमोऽस्तु। और कई बार नमोऽस्तु॥

जीवनी के इस खण्ड में कुछ ऐसे पन्ने भी हैं जो ज्योतिष विद्या से सजे संवरे हैं। भारत के प्रख्याततम ज्योतिष-विदों में से एक श्री उमाशंकर पोद्दार मेरे समीपी हैं, स्थानीय हैं, उन वयोवृद्ध ज्योतिषी के सान्निध्य में उनके युवा पुत्र ज्योतिषरत्न श्री भरतकुमार पोद्दार ने स्वेच्छा से आचार्यश्री की कुण्डली प्राप्त कर उस पर कुछ कार्य किया है जो संक्षिप्त किन्तु विचारपूर्ण है, उसे इसी कलेवर में अविकल संकलित कर लिया गया है। यो स्वतः आचार्यश्री ज्योतिष के मर्मज्ञ विद्वान् हैं, फिर भी श्री भरत के पन्ने पाठकों को आत्म विश्लेषण में सहायक होंगे। वे पूज्यश्री से हृदय-तल तक प्रभावित हैं, कुण्डली को देश के ७० करोड़ जैनाजैन की कुण्डलियों से भिन्न किन्तु विशेष होने का दावा करते हैं। वर्तमान में श्री भरत एक शोध कार्य हाथ में लिये हैं, 'विकलांगता और ज्योतिष' विषय पर सर्वथा, कुछ

नया लिख रहे हैं।

प्रथम खण्ड के प्रकाशन में जिन भक्तों ने अपना हृदय-मन व अर्थ दिया है वे देश के सम्पूर्ण समाज से बधाई पावेंगे, उनके नाम यहाँ उद्धृत न करूँ तो मुझे चैन न मिलेगा-श्री राकेश जैन (बाल ब्रह्मचारी) जबलपुर एवं छायांकन के लिए श्री महेन्द्र चौधरी, श्री मुकेश जैन जबलपुर के नाम उल्लेखनीय हैं।

विभिन्न दुर्लभ चित्रों के लिए एक बार पुनः श्री महावीर प्रसाद जी अष्टगे का आभारी होता हूँ। फिर आभारी होता हूँ विदुषी ब्र० बहिन शान्ता जी एवं ब्र० सुवर्णा जी का, जिनने चित्र एवं गाथाएँ भिजवाने में मुझे सहयोग किया।

आभार तो भाई श्री कल्याणमल झांझरी का भी मानना होगा जिनके प्रयास से एक दुर्लभ चित्र पा सका।

अंत में आभारी हूँ पूजनीय पिता श्री फदाली लाल जैन (सांधेलीय), पूज्य माता श्रीमती फूलमती बाई जैन का जिन्होंने अनपढ़ होते हुए भी, मुझे लिखने की प्रेरणा दी। जीवन संगनी श्रीमती पुष्पा जैन जो वर्ष भर इस कृति से, एक छात्र की तरह जुड़ कर, सहयोग करती रहीं, का भी आभार ज्ञापित करता हूँ।

सरल कुटी, गढ़ा फाटक, **सुरेश जैन 'सरल'**
जबलपुर (म.प्र.) २० जुलाई १९८५

विद्याधर से विद्यासागर

सूर्य उतरा, हिमालय के वक्ष पर टहलने लगा। हिमखण्डों को समेट कर सिर पर ढारने लगा, करने लगा स्नान, हिम का स्नान और सूर्य की ठण्डक फैलने लगी वातास में, तपन का उस रोज कोई प्रभाव नहीं दिखा, थी फैली-फैली शीत, वातावरण में शुभ्रता और शीतलता का स्पर्श गाढ़ा हो पड़ा, तो लोग पहचाने उस चाँदनी रात को, जिसे बोल-चाल की भाषा में 'शरद पूर्णिमा' कहते हैं।

रात की गोद में सूर्य खेले तो उस रात को क्या कहा जा सकता है? शरद पूर्णिमा? नहीं, वह तो हर वर्ष आती है।

कहने को वह शरद पूर्णिमा ही थी, पर सच कहूँ- उसे कोई नाम न दो। वह रात सभी रातों से परे एक विशेष रात थी। कहा न, उस रात की गोद में सूर्य उतरा था। वह शरद पूर्णिमा भर कैसे कहलायेगी। उसके लिए कोई विशिष्ट संज्ञा चुननी होगी। सुनो, वह थी- 'विद्या पूर्णिमा'। रात की गोद में जो सूर्य उतरा था उसका लौकिक नाम बाद में जान पाए, वह नाम था 'विद्याधर'।

श्रीमान मल्लप्पाजी अष्टगे (पिता) :

यह कोई आदिम-युग की बात नहीं है, हाल ही की बात है जब नागरिक सभ्यता में घड़ी का प्रादुर्भाव हुए भी एक युग बीत गया था। हाँ, हाल ही की बात, जब लोग घड़ी देखकर सोते और उठकर घड़ी देखने लगे थे।

उस रात जब सूर्य उतरा तो जानकार लोग कहते हैं- घड़ी में साढ़े ग्यारह बजे थे और रात अपनी गोद के सूर्य से दमकने लगी थी। किसी ने हृदय की डायरी पर लिखा-विक्रम संवत् २००३ की रात सूर्य दिखा।

डायरी पर कुछ टाँकने वाले हाथ थे-मल्लप्पाजी के। मल्लप्पाजी

जिनकी धर्मपत्नी थी–श्रीमंती जी। ग्राम सदलगा के श्रेष्ठ दम्पत्तियों में सर्वश्रेष्ठ। उनके यहाँ रात में सूर्य उतरा और पहले दिन ही 'विद्याधर' कहलाने लगा।

मल्लप्पा ने पाया था–विद्याधर बेटा। श्रीमंती ने पाया था विद्या बेटा।

पादटीप : यूँ विद्याधर जी का जन्म सदलगा के पास चिक्कोड़ी नगर के अस्पताल में हुआ था।

श्रीमती श्रीमंती जी अष्टगे (माता) :

पालने में सूर्य झूल रहा था। दृष्टि पड़ी मल्लप्पाजी की तो बुदबुदाए श्रीमंती से–तीर्थंकर झूल रहे हैं। सुनकर चैन मिला सूर्य की माँ को, जैसे कभी मिला था माँ त्रिशला को। तभी मल्लप्पाजी ने बात आगे बढ़ाई–है स्मरण अक्किवाट का? 'अक्किवाट' सुन बिहँस गई माँ। दृष्टि पहुँच गई सदलगा से अठारह कि० मी० दूर उस समाधि स्थल पर जिसमें एक ऋद्धिधारी मुनि भट्टारक विद्यासागर की स्मृति संचित थी और जिसे अक्किवाट के नाम से जाना जाता था। जहाँ माथा टेकने यह दम्पत्ति /युगल अष्टमी या चतुर्दशी को आए दिन जाता–आता रहता था। माँ को लगा किसी का आशीष उतर आया है शिशु बनकर। आशीष किसका? ऋद्धिधारी दिगम्बर मुनि का? जिनकी समाधि के कारण था प्रसिद्ध वह अक्किवाट?

तो मुनि की विद्या से कोई सूर्य उतरा था उस रोज या मल्लप्पाजी और श्रीमंती की अंतर्विद्या का कोई चमत्कार था। था अवश्य तभी तो दम्पत्ति ने परस्पर सम्मत होकर शिशु का नाम रखा था–'विद्याधर'।

उस दिन श्री जी को ज्वर चढ़ा था, मंदिर से लौटकर लेट गई थी क्षण भर को। अस्वस्थ। दृष्टि पड़ी मल्लप्पाजी की। समझ गये कि अस्वास्थ्य को अस्वास्थ्य न मान श्री जी आज का भी व्रत करेंगी। चतुर्दशी जो ठहरी। करने लगे अनुरोध–आयि श्री, तू दिन प्रतिदिन कमजोर होती जा रही है, सैकड़ों अष्टमी और चतुर्दशी आई और तू हर बार उन्हें सिर–आँखों पर लेती रही, कभी व्रत कभी उपवास। आज मेरी बात मानो–न करो व्रत। स्वस्थ्य

हो जाओ, फिर वह सब ठीक लगेगा। तब न रोकूँगा।

क्षण भर को शांत बनी रही श्री जी। फिर नारीत्व की सम्पूर्ण शिष्टता जिह्वा पर ला सम्भालकर उत्तर देने लगीं–आज क्या सम्बोधन दूँ आपको। कहूँ–मोही? कहूँ–रागी? हाँ प्रिय आप नहीं बोल रहे, आपका मोह और राग एक साथ बलवान हो पड़ा है इस क्षण तो। नाथ इस परिवार मैं व्रतादिक की निर्दोष परम्पराएँ दशाब्दियों से देख रही हूँ। उन्हीं में से कुछ मैंने धारण कर ली हैं, तो क्या वे शरीर के लिए थीं? नहीं मनःआत्मा के लिए। शोध का खान–पान। आगम अनुकूल विवाह संस्कार। सब कुछ श्रेष्ठ देखा है प्रारम्भ से ही इस खानदान में। तो क्या श्रेष्ठ को अतिश्रेष्ठ न बनाने दोगे। मोह की आवाज को दबा लीजिए आज, मुझे करने दीजिए अपने व्रतादिक। इनसे और–और बल मिलता है इस आत्मा को।

श्रावकत्व का जागरण :

अष्टगे गोत्र को धारण करने वाले श्री मल्लप्पाजी जैन, श्रीमंति जी के जैनत्व को बारीकी से समझते थे, जब अस्वस्थता के नाम पर श्री जी तैयार न हुई तो उन्होंने दूसरी आपत्ति उठाई गृह संसद में, कहने लगे–अभी पीलू[१] तीन माह का है। तुम्हारे व्रत–उपवासों के चक्कर में कहीं वह न भूखा रहने लगे। यह तीर भी मल्लप्पाजी का निशाने पर था, पर निशाना सध जाने के बाद भी कभी–कभी कार्य अनुकूल नहीं होता। मुस्काई श्री जी। अधर पर एक निर्मल मुस्कान थिरक गई। चकित थे देखकर मल्लप्पाजी, कह पड़े–क्या तुम्हें ज्वर नहीं है?

–है शरीर को है। आत्मा को नहीं।

–छोड़िए यह ज्ञान, अपना और बच्चे का ध्यान रखना चाहिए अभी आपको।

–और आपका भी।

सुनकर भाग गये मल्लप्पाजी, श्री जी के सामने से। जैसे एक पंडित दूसरे पंडित को अपनी बात न समझा पाया हो।

---

१. विद्याधर को बचपन में पीलू कहते थे।

मुस्काते रहे वे श्रीजी के दृढ़ संकल्प पर। परिवार की सुन्दर परम्परा पर। तभी पालने से किलकारी आई पीलू की। माँ ने बढ़कर देखा–दाहिने पैर का अंगूठा चूसते हुए जैसे प्रद्युम्न पड़े हों और अंगूठे से अमृत की निर्झरणी बह रही हो। गोरे चिट्टे कोमल बदन वाला शिशु। माँ बड़ी देर तक निहारती रही उसकी बड़ी–बड़ी आँखों में कुछ। तभी एक जलधार चली, शिशु ने दोनों जंघाओं के मध्य से जैसे कोई पिचकारी चलाई हो। बदले तत्क्षण माँ ने पालने के कपड़े, लिटाया शिशु को सूखे में, शिशु के रक्तकपोलों पर खिले पुष्प चूमे और फिर चली गई अपने कपड़े बदलने।

स्वप्न–संकेत :

पति से प्राप्त मृदु हास्य का सुख, ऊपर से पीलू की मुखमुद्रा का दर्शन, श्री जी तो जैसे अस्वस्थ है ही नहीं। प्रसन्नता ने ढकेल दिया तन के दर्द को। चेहरा हो गया ललाम। सोचने लगी उस स्वप्न का महत्त्व जो तब देखा था, जब पीलू गर्भस्थ था। समझ ही न पा रही थी कि वह स्वप्न ही था या कोई प्राकृतिक संकेत। अर्धरात्रि का पहर था वह, आँखों में नींद अँजी हुई थी। सो रही थीं श्रीजी, कि देखती हैं, कहीं दूर से एक चक्र घूमता हुआ उनकी तरफ आ रहा है।

चक्र आया, बिलकुल पास आ गया और रुक गया श्रीजी के कक्ष में। अभी चक्र को आए एक पल भी न हुआ था कि बादलों के मध्य से दो तीर्थंकर भगवान् भी खिंचे से चले आये श्रीजी के भवन की ओर। उनके पीछे थे दो चारण ऋद्धिधारी दिगम्बर मुनि। देखकर उन्हें श्रीजी पड़गाहने लगी। विधि बन गई मुनि थम गये श्री के द्वार। दिया आहार श्रीजी ने। निरन्तराय आहार। एक को नहीं दो–दो मुनियों को।

चले गये वे वापस। खुल गई तभी आँखें। रात भर सोचती रही श्रीजी स्वप्न का सार। जानने व्यग्र। क्या पूछे? किससे पूछे? स्वप्न तो त्रिशला को भी आये थे, एक नहीं सोलह और आये थे गर्भ में महावीर। तुलना करने में श्रीजी को झिझक लगती थी अतः चुप रह गई। स्वप्न भविष्य पर छोड़ दिया था।

माने, वे जानती थीं, अच्छी तरह जानती थीं स्वप्न के अर्थ को। पर वे चुप थीं। एक दिन बतलाया भी, तो सिर्फ मल्लप्पाजी को। वे स्वप्न-दृश्य से थिरक उठे मन ही मन। बोले कुछ न। बने रहे गंभीर और सोचने लगे-स्वप्न तो मुझे भी आया था। डरावना स्वप्न। जंगल में खड़ा हूँ। अचानक एक विशाल सिंह झाड़ियों के झुरमुट से दहाड़ कर सामने आ जाता है। मैं किंकर्त्तव्यविमूढ खड़ा रह जाता हूँ, डरता काँपता। सिंह निर्भयता-पूर्वक मेरी ओर बढ़ता है। छलांग लगाता है और देखते ही देखते समीप आकर मुझे उदरस्थ कर लेता है। नींद खुली तो मैं हाँप रहा था। भय से विचलित हो गया था, तभी याद आया, अरे, यह तो स्वप्न था। फिर सोचते रहे-जाने कैसे-कैसे स्वप्न आते हैं।

पुरजनों का आदर :

मल्लप्पाजी की शान्त और सात्विक वृत्ति के कारण नजदीकी लोग, उन्हें अक्सर मल्लिनाथ कहकर पुकारते थे। छेड़छाड़ से ऊपर, यह एक हार्दिक सम्मान भाव था मित्रों का। क्यों न होता? मल्लप्पाजी ने अपने पुत्रों के नाम तक तो तीर्थंकरों के प्रतीक रखे थे। महावीर स्वामी का स्मरण होता था जब वे पुकारते बड़े पुत्र महावीर बाबू को, फिर अनन्तनाथ और शांतिनाथ। पीलू जिनका नाम तीर्थंकर पर तो नहीं है पर काम धीरे-धीरे उसी दिशा को हो गया। पुत्रियों के नाम शान्ता और सुवर्णा। यो उनकी सन्तान का जन्म क्रम इस प्रकार था। प्रथम संतान के रूप में सन् १९३९ में जिस बालक ने जन्म लिया था, वह मात्र छः माह की अल्पायु में चल बसा था, उसका नाम चन्द्रकांत रखा गया था। सन् १९४१ में एक पुत्री हुई थी, जो करीब सात वर्ष बाद बिदा ले गई थी। उसके बाद जन्मे थे महावीर प्रसाद जी सन् १९४३ में जो आज भी अष्टगे-परिवार के मुखिया की हैसियत से सपरिवार सदलगा में अवस्थित हैं। १९४६ में पधारे विद्याधर जी, फिर शान्ता, फिर सुवर्णा। इनके बाद जिस पुत्र ने जन्म लिया था, वह मात्र तीन वर्ष की उम्र में चल बसा था। उसका संज्ञाकरण किया गया था-धनपाल। धनपाल के बाद अनन्तनाथ, फिर शांतिनाथ। शांतिनाथ अंतिम

नहीं हैं, उनके बाद एक और पुत्र हुआ था, पर वह जन्म के कुछ समय बाद ही मृत हो गया था। कुल दस संतानों ने जन्म पाया था श्रीमंती जी की कोख से, यह पृथक बात है कि उनमें से ४ जीवित न रह सके।

पुत्रों के धार्मिक नामों के साथ–साथ मल्लप्पाजी के कतिपय धार्मिक कार्य भी चर्चा का विषय बनते थे। उनकी चर्या में देवदर्शन की तरह शाम का शास्त्र पाठ भी अनिवार्य हो गया था। मंदिर जाते तो देर तक शास्त्र बांचते।

मल्लप्पाजी खाते–पीते परिवार के एक योग्य नागरिक थे। उनकी योग्यता की कहानी घर–बाहर चलती रहती थी। हर कार्य समय पर करते। एक दिन घर पर लगाये गये नन्हें से बगीचे में एक खाट पर लेटे हुए मात्र साल भर के पीलू को देखा तो काफी देर तक देखते रहे। पीलू उस समय दिगम्बर अवस्था में पड़े अपना अंगूठा चूस रहे थे। कमर पर बांधी गई रजत–करधनी शोभा बिखेर रही थी, नन्हें शिशु की छबि देखते ही बनती थी। मल्लप्पाजी को लगा कि 'शिशु सौन्दर्य' जो इस क्षण है, वह विशेष है, वे दौड़कर कैमरा उठा लाये और सुन्दर छबि को कैद कर लिया।

किलकारियों की झड़ी लगा रखी थी, उस दिन पीलू ने जैसे शिशु वाणी में ही प्रवचन सुनाने का प्रयास कर रहा हो। हँसते रहे मल्लप्पाजी। प्रमुदित होती रही श्रीमंतीजी।

श्रावकोचित पारिवारिक स्थिति :

बीस एकड़ कृषि, दुकान और साहूकारी। कुल मिलाकर परिवार सम्पन्न था। जीवन–रथ सुख से चलता था। एक दिन उन्होंने तीर्थाटन की तैयारी कर डाली। पति, पत्नि और साथ में डेढ़ वर्ष का पीलू भी।

दो माह तक पर्यटन चलता रहा। श्रवणबेलगोला, कारकल, मुडबिद्री, हैलिबिड, ग्येरसप्पा, मैसूर आदि अनेक स्थानों को गये। गोम्मट–स्वामी के दर्शनोपरान्त पति–पत्नि क्षणभर को विश्राम लेने लगे, तब तक पीलू कुरढ़ता हुआ चला गया–सीढ़ियों की ओर। अचानक बच्चे के रोने की आवाज आई। मल्लप्पाजी और श्री जी पागलों की तरह भागे आवाज की दिशा में।

आवाज पीलू की थी। पीलू थे दस सीढ़ियाँ नीचे। लुढ़क गये थे। माता-पिता तड़पकर वेग से जा पहुँचे पीलू के पास। जाने कितनी चोट लगी हो? जाने कैसी चोट लगी हो, रो पड़ा माँ का दिल। घबड़ा गया पिता का कलेजा। उठा लिया पीलू को। गोद लेते ही पीलू खुश। न कोई चोट, न कोई भय। चकित हो गये माता-पिता। फिर कौंध गया स्वप्न माँ की आँखों में, छा गई शान्ति मन में। मुस्काई माँ-नटखट कहीं का।

एक तीर्थ की वेदी पर मल्लप्पाजी ने बादाम चढ़ाये और माथा टेक कर झुके रह गये। तब तक पीलू जी फिर उतर गये माँ की गोद से। माँ ने कहा-बोलो, भगवान् की जय। पीलू के नन्हें-नन्हें अधर हिले और आवाज निकली 'त्यै', तोतली जय का महत्त्व उस दिन समझ में आया दम्पत्ति को। दोनों 'त्यै' शब्द पर खो से गये। तभी पीलू जी बेदी पकड़कर खड़े हो गये और दो बादाम अपनी पतली-पतली अंगुलियों से उठाकर रख ली बुशर्ट के जेब में। माँ फिर चकित। कैसा है यह नटखट? वेदी से पुंज उठाता है! जिज्ञासा और बढ़ी। कहीं पुंज खाता तो नहीं? देखती रही माँ मन्तक-मन्तक। पर वाह रे पीलू। बादाम, किसमिस जेब में तो धरली परन्तु मुँह में नहीं डाली। परखती रही माँ बड़ी देर तक। फिर उठाया गोद में। निकाले जेब से बादाम। पूछा -यह क्या है पीलू? पीलू क्या बोलता? दोबारा जब फिर पूछा क्या है यह? तो पीलू दाँत चमकाते हुए बोले-त्यै। माने जय। माँ को पीलू की त्यै खूब पसन्द आई। वे उसके दोनों हाथ पकड़कर काफी देर तक जय बुलाती रहीं और नजर बचाकर दोनों बादाम जेब से निकलकर रख दिये पूर्ववत्। पीलू बोलते रहे त्यै।

यात्रा प्रसंग :

इस यात्रा में एक और सुन्दर प्रसंग जुड़ा जिससे सभ्य नागरिकता का परिचय मिलता है। मूडबिद्री में जिस स्थान पर मल्लप्पाजी रुके थे, वहीं उत्तर भारत का एक परिवार भी रुका हुआ था। दोनों परिवार पास-पास बैठकर भोजन लेने लगे। ऐसे समय एक दूसरे के भोजन पर दृष्टि जाना स्वाभाविक भी है। मल्लप्पाजी के टिफिन और डिब्बों में दक्षिण को रास

आने वाला पकवान भरा हुआ था जिसमें ज्वार और मक्का से बनी हुई कुछ प्रसिद्ध रसोई दूर से ही आमंत्रित कर रही थी। इसी प्रकार दूसरे परिवार के टिफिनों से उत्तर–भारत को प्रिय लगने वाली गेहूँ–बेसन आदि से निर्मित सामग्री झाँक रही थी।

उत्तर–भारत के सज्जन से न रहा गया वे अपनी धनिक–प्रवृत्ति को एक तरफ फेंककर बोले–आपकी सामग्री तो मजेदार दिख रही है।

मल्लप्पाजी मुस्कराकर कह पड़े–तो लीजिए इसी में से पाइये। इतना सुनना था कि उत्तर–भारत ने दक्षिण–भारत के आगे थाली बढ़ा दी। दक्षिण की सामग्री प्राप्त कर लेने के बाद, उत्तर की सामग्री भी दक्षिण की थाली में विनयपूर्वक रखी गई। देखते ही देखते दोनों परिवार मिल गये, दोनों की सामग्री मिल गई और सबने मिल–जुल कर भोजन किया।

उस दिन लगा न कहीं उत्तर है, न दक्षिण, कुछ है तो है भारत। मात्र भारत। ज्वार–मक्का, गेहूँ–चने की एकता का भारत। उत्तर–दक्षिण, पूरब–पश्चिम के ऐक्य का भारत।

यात्रा पूरी हो गई। लौट आये सब घर। माँ परेशान थी। पीलू डेढ़ से दो वर्ष का हो गया, पर कुछ खाता नहीं। दूध भी पीता है तो केवल गाय का। भैंस का दूध पीने से बीमार पड़ जाता है। है भी बड़ा नरम–गरम। अतः उसकी विशेष देख–रेख आवश्यक हो गई। सभी उन्हें बारी–बारी से खिलाने–पिलाने को तत्पर रहते।

❑ ❑ ❑

वर्षा ऋतु का प्रारम्भ था वह, खेतों से लेकर घर तक में कीड़े–पतंगों का जोर। शाम होते ही वह और बढ़ जाता। कस्बा बस्ती की आब–हवा में यह सब है भी अनुकूल। भीतर वाली देहलीज पर हाथ रखकर बैठा था पीलू। दूसरे हाथ का अंगूठा मुँह में था। अंगूठे में जाने कैसी मिठास थी कि पीलू चाहे जब उसे चूसता रहता। उस दिन भी वह चूसने में आनन्द ले रहा था। सिर की झालर फरफरा रही थी। आँखें मोतियों की तरह चमक रही थीं। छोटे–छोटे हाथ कभी मुँह की तरफ, कभी दहलीज की तरफ उठते

गिरते।

परिवार के लोग अपने कामकाज में लगे थे। एक हृदय विदारक चीख सुनाई दी। चीख के बाद जोर से रोने का क्रम। रोने में तड़पन। तड़पन में घबराहट। सारा घर इकट्ठा हो गया। देहलीज पर। पीलू टन्ना-टन्ना कर रो रहा था। माँ ने गोद में उठाकर छाती से चिपका लिया। तभी सबकी नजर में एक बड़ा कीड़ा दिखा जो दहलीज से चिपका बैठा था। महावीर चिल्लाए- अप्पा जी बिच्छू।

सारा घर चकित हो बोल पड़ा-क्या बिच्छू। कहाँ? सब वहीं देखने लगे। जहाँ पीलू बैठे थे। बिच्छू अपना कार्य पूर्ण कर मंगल-बिहार कर गया। नन्हें पीलू को दे गया तड़पन। साथ में सारा परिवार तड़प गया। माँ पगला गई। पिता बौरा गये। महावीर घबड़ाकर हकीम को लाने दौड़ गये। घर में कोहराम छा गया। जहर चढ़ रहा था। पीलू की सामर्थ्य से बाहर, दर्द का घेरा बढ़ता गया। शिशु चीखते-चीखते बेहोश हो गया। सारे घर में मुर्दानगी छा गई। पुरा-पड़ोस के लोगों का ताँता लग गया। किसी ने सुना पीलू को बिच्छू ने काटा, किसी ने सुना पीलू को कुछ हो गया। एक अशांति फैल गई वातावरण में। माँ सारी रात गोद में रखे रही पीलू को। पिता सारी रात उठते-बैठते रहे व्यवस्था को नजर में रख। रोते-सिसकते रात काटनी पड़ी पीलू को।

सुबह की सभी को प्रतीक्षा थी। नई सुबह आई। बाल-सूर्य ने किरणों का जाल फेंका और देखते ही देखते धरती के बाल-सूर्य का दुख दर्द खिंचकर चला गया कहीं। पीलू के पास से उठने की इच्छा किसी की न हो रही थी। ज्यों ही पीलू जागा, उसे माँ गोद में लेकर खिलाने लगी। सारा घर वहीं बैठा रहा। मुस्काते रहे सब पीलू को हँसता-खेलता देखकर।

शिशु वर्णन :

''ठुमक चलत रामचन्द्र, बाजत पैजनिया'' तुलसीदास ने बाल-राम की छवि को अन्तस् में निहार कर जो चित्र दिया है मानस में, वहीं चित्र इन दिनों सदलगा में दिख रहा है। चार वर्ष का स्वस्थ गोरा, बातूनी,

बालक, मल्लप्पाजी के घर–आँगन में बसंत की सुगंध की तरह छा गया है माहौल पर। छोटे–छोटे पाँव, गोल जंघाएँ, सुन्दर कटि, कटि पर चमकती करधनी, गोल पेट, पुष्ट वक्ष, सुडौल स्कन्ध, बहादुरों की तरह गले पर सधा हुआ सिर, कुल मिलाकर जो देखता इस नन्हें बालक को, सो देखता रह जाता। बड़ी–बड़ी आँखें चाहे जिसे अपनी ओर आकर्षित कर लेती। आँखों पर पलकों का बारबार गिरना, उठना, फिर पुतलियों का चमकना। सिर पर काले रेशमी पतले बालों के गुच्छे मनोहर ही तो लगते सभी को, मीठी बोली, खनकती–हँसी और नटखटिया–स्वभाव। काश उस छवि का दर्शनपान आदमी के चर्मचक्षु, एक बार कर पाते।

कुछ दिनों से उसे चाकलेट खाने की लत पड़ गई है। सुबह से शाम तक वह किसी न किसी प्रकार से अपनी आवश्यक वस्तु हेतु 'अप्पाजी' से निवेदन कर देता। कभी हँसकर, कभी रूठकर अपनी चाकलेट पा लेता। जिस दिन मल्लप्पाजी स्वयं चाकलेट दे देते, उस दिन उनकी खुशी अखण्ड हो जाती, दिन भर के लिए सबसे स्याने बन जाते, न अन्य चीज की फरमाईश करते न चाकलेट दोबारा माँगते, बस सबसे कहते–हमने चाकलेट खाई, तुम भी खाओ। घर के सदस्य मुँह चलाकर बतला देते–देखो मैं यह खा रहा हूँ। उनके मुँह को कुछ चबाता सा देखकर उन्हें विश्वास हो जाता कि उस सदस्य ने भी चाकलेट खाई है, चाहे वह मल्लप्पाजी हो, चाहे श्रीजी और चाहे महावीर प्रसाद जी हो, चाहे बुआ जी या फूफा जी। मात्र देख लेने से तुष्टि नहीं होती बालक को, सो पूछता अच्छी लगती है? सामने वाले को तब सिर हिलाकर बोलना पड़ता–हाँ अच्छी लगती है। तब बालक उन्हें हिदायत देता। अच्छा कल फिर खाना। सामने वाले सज्जन उछलकर बालक को गोद में उठा लेते, कपाल चूमते और फिर उत्तर देते, हाँ कल फिर खायेंगे और तुम्हें भी खिलायेंगे। बालक मुस्काता रहता।

एक दिन मल्लप्पाजी तम्बाखू की बिक्री में व्यस्त रहे। शाम को ग्राहकों से दाम लिये और तिजोरी में धर दिये। जब वे रुपये रख रहे थे, बालक पीलू जी वहीं खेल रहे थे, नोटों की गड्डियों पर नजर पड़ गई। जाकर

तुरन्त माँ से बतलाने लगे-अक्काजी, वहाँ तिजोरी में अन्नाजी (पापाजी) ने इतनी सारी गड्डियाँ रखी हैं। इनसे तो खूब चाकलेट आयेगी। हम सारी चाकलेट खरीदकर रख लेंगे, फिर रोज रोज खरीदने दुकान तक नहीं जाना पड़ेगा।

माँ अपने काम-धाम में व्यस्त थी। सो बातों को अधिक समय न दे सकी, मुस्कुराकर बोलीं-हाँ, रख लेना बस, जा अब खेल, मेरा अभी सारा काम पड़ा है।

-खेलने चले गए पीलू। दूसरे दिन सुबह-सुबह पिताजी से पैसे माँगने पहुँच गये। अन्नाजी-अन्नाजी, पैसे दो, हम चाकलेट लेंगे। मल्लप्पाजी को चिढ़ाने का अवसर मिल रहा था सो बोले-अभी पैसे नहीं है, बाद में देंगे। उनका मतलब फुटकर पैसों से था, पर पीलू को आज फुटकर से कोई सरोकार नहीं था उन्हें तो कल शाम को रखी गड्डियाँ दीख रही थीं। सो तपाक से बोले-अन्ना जी, आप झूठ बोलते हैं, तिजोरी में खूब सी गड्डी हैं। एक गड्डी हमें भी दो न, चाकलेट लेंगे।

खिलखिला गये मल्लप्पाजी। हँसते हुए बोले- सारे गाँव वालों को चाकलेट खिलाना है क्या। चुप रहा बालक। मल्लप्पाजी ने कहा-जा थोड़ी सी ज्वार देकर चाकलेट ले आ। बालक तैयार न हुआ, बोला-नहीं हम नोट लेंगे। गड्डी वाला नोट।

खुल्ले पैसे सही में नहीं थे, अतः मल्लप्पाजी ने पाँच का नोट देकर कहा- जा ले आ। मल्लप्पाजी सोच रहे थे-यह नोट लेकर अपनी माँ के पास जायेगा फुटकर करने।

पर पीलू तो सही में पीलू थे, नन्हें थे, वे सीधे दुकानदार के समक्ष जा पहुँचे। उन्हें बहुत सारी चाकलेट जो खरीदनी थी। दुकानदार पीलू जी से चिरपरिचित थे, उसका यह ग्राहक चाकलेट खरीदने रोज-रोज जो आता था। बतियाने के भाव से दुकानदार सदा की तरह प्रेम से बोला-क्या चाहिए पीलू बेटे? पीलू ने नोट उसे दे दिया फिर एक समझदार ग्राहक की तरह बोले-चाकलेट दे दो।

दुकानदार चिढ़ाकर बोला–अरे बाबा, इतना बड़ा नोट, क्या पूरे की चाकलेट चाहिए।

– हाँ पूले की चाहिए।

– अच्चा, मेली दुकान खाली कलना है क्या? इतनी सारी चाकलेट काए में ले जाओगे।

– जेब में।

– जेब में नहीं आएगी बेटे।

– तो हाथ में भी ले लूँगा।

हँसता रहा दुकानदार पीलू के भोले पन पर। फिर बोला, अच्छा जाओ अपने अन्ना जी से पूंछ कर आओ कितनी चाकलेट लेना है।

पीलू दुकानदार की इस पूछ–पुछउअल से तंग आ गए, बोले– ''तुम यहीं लुकना, मैं अबी पूछ कल आता हूँ।''

दौड़ते ठुमकते पीलू जा पहुँचे पिताजी के पास, पूछने लगे–कितनी चाकलेट लेना है? मल्लप्पाजी समझ गए कि दुकानदार ने लौटाया होगा, बोले–जा चार आने की चाकलेट ले लेना। एक चवन्नी जेब में रखने के लिए लेना और बाकी के पैसे ले आना।

पीलू फिर दौड़े। बाल फरफर उड़ते रहे। करधनी चमकती रही। पैर फूल की तरह पड़ते रहे सड़क पर। छोटे–छोटे हाथ मुठी बाँधकर ऐसे मोड़ लिए थे छाती की ओर, जैसे टूर्नामेन्ट का अनुभवी धावक दौड़ लगा रहा हो स्टेडियम के ट्रेक पर।

हाँफते हुए बतलाने लगे पीलू दुकानदार को–चाल आने की चाकलेट दे दो औल एक चवन्नी जेब में रखने को दे दो।

दुकानदार को पीलू की चाकलेट–धुन देखकर बुदबुदना पड़ा–धुन भाई धुनिया अपनी धुन, अपनी धुन में पाप न पुन। पीलू कुछ न समझा। दुकानदार बालबोध–जन्य आनन्द लेता रहा और आँखे गड़ाकर पीलू को देखता रहा काफी देर तक। फिर बोला– तो जनाब को चाकलेट चाहिए और चवन्नी भी चाहिए, बाकी कुछ नहीं चाहिए?

वह मल्लप्पाजी के परिचितों में से था। उसने एक पेकेट में चाकलेट लपेट कर दी, फिर चवन्नी निकालकर दिखाई और उसके जेब में रख दी और एक पुड़िया में शेष पैसे लपेट कर पीलू के दूसरे हाथ में पकड़ा दिये, फिर हिदायत दी–देखो पीलू बेटे चाकलेट तुम ले लेना, चवन्नी तुम्हारी जेब में रखी है, बस यह दूसरे हाथ की पुड़िया अपने अन्ना जी को दे देना। कहीं गिराना नहीं।

'जी!' फर्र से उड़ गया पीलू। इस बार की चाल देखने योग्य थी। चाकलेट का धनी सदलगा की सड़कों पर से होकर जिस गुमान से चल रहा था, वह देखने लायक तो था ही, मूवी कैमरा में उतार लेने लायक था।

घर पहुँच पिता की पुड़िया पिता को दे दी। शेष जायदाद अपने पास ही रखी।

शाम को दुकानदार से मुलाकात हुई मल्लप्पाजी की, तो घंटा भर तो वह पीलू की प्रशंसा करता रहा। दोनों उसकी बालबुद्धि का आनन्द लेते रहे। मगर मल्लप्पाजी ने एक और बात सोची–'इष्ट सिद्धि की दिशा में इस नन्हे बालक के प्रयास और लगन सराहनीय है।'

सदलगा की गोद में एक वर्धमान का बचपन जैसे नए शिर से गमक उठा हो। रोज–रोज बालक की ठिठोली होती, रोज–रोज कुछ नया घटता और रोज–रोज लोगों की छाती जुड़ाती।

करधनी वाली कटि बस गई लोगों को आँखों में, चाकलेट वाली छवि अंजगई माताओं की आँखों में और चवन्नी वाली शान रम गई पुरा–पड़ोसियों के कंठों में।

बाल्यावस्था और विद्यामंदिर :

हो गये पाँच वर्ष के पीलू। शाला में नाम लिखाना आवश्यक हो गया, पिता को। सोचते–सोचते एक दिन पीलू को लेकर शाला पहुँचे। ग्राम्य–अंचल की वह प्राथमिक–शाला छात्र को बहुत पसन्द आई, आँखें फाड़े–फाड़े पीलू कमरों को देखता, कभी छात्र समूह को, कभी सामने के कक्ष की दीवाल पर टांगे गये श्यामपट को। जब तक पीलू निहारते रहे

अपने शिक्षा–केन्द्र को, तब तक प्रधान अध्यापक और मल्लप्पाजी की बातें पूरी हो गई। लिखने लगे नाम रजिस्टर पर तो पूछ बैठे प्रधान जी...क्या नाम है बेटा? पीलू ने मुखमंडल का तेज बरकरार रखे हुए प्रधान जी की तरफ देखा और बाल–सुलभ उत्तर दिया...''जी मेरा नाम विद्याधर है'' प्रधान बालक की खनकती आवाज सुन मुग्ध हो गये। फिर चिरौरी करते हुए बोले–अच्छा बेटे, वह सामने तुम्हारी कक्षा है, वहाँ जाओ, वहाँ तुम्हारे कक्षा–शिक्षक भी हैं, वहीं जाकर पढ़ो। 'जी' कहकर चल पड़ा विद्या उस कक्षा की ओर। पिताजी को यह देख बहुत अच्छा लगा। वे पीछे–पीछे चल पड़े। पहली कक्षा के द्वार पर रुककर उन्होंने शिक्षक को अभिवादन किया। मुस्करा दिया शिक्षक ने। समझ लिया संकेत मल्लप्पाजी ने। वे लौट गए। विद्या प्रवेश कर गये विद्या मंदिर में।

कुछ ही दिनों में विद्या मंदिर की पहली कक्षा की दीवालों से सुरीली आवाज छनकर बरामदे में आने लगी। विद्या जब भी बातें करता, सुनने वाले मंत्रमुग्ध हो जाते। बच्चे की आवाज, वह भी सुरीली, लोग कहते यह तो गिनी है गिनी। कर्नाटक का गिनी हिन्दी–प्रदेश में तोता कहलाता है।

तोता जैसी आवाज के कारण पीलू पीलू न रह गये, न रहे विद्याधर, हो गये गिनी... तोता। शिक्षक तो शिक्षक, बाहर के लोग भी विद्या को तोता कहने लगे। तोता पढ़ने लगा जी लगाकर। देखते ही देखते पहली से दूसरी दूसरी से तीसरी और तीसरी से चौथी में पहुँच गये।

समाधान के हिमायते :

मल्लप्पाजी जब शास्त्र बाँचने बैठते मंदिर में तो वृद्ध, प्रौढ़, युवक श्रावकों के मध्य एक नन्हा–श्रावक भी हुआ करता, जो बड़ी–बड़ी आँखों से टुकुर टुकुर देखता रहता मल्लप्पाजी की तरफ, कभी वेदी की तरफ और कभी साथ बैठे लोगों की तरफ। लोग उसे देखते तो लगता सबसे बड़ा श्रोता तो यह है। वाचनोपरांत सभा विसर्जित हो जाती, नन्हा–श्रावक सीधा मल्लप्पाजी के पास पहुँच जाता और कोई न कोई प्रश्न जड़ देता। कभी तो मल्लप्पाजी उत्तर देते, कभी कह देते–पीलू बेटे घर चलकर बतलायेंगे।

सुनकर शान्त हो जाते पीलू, पर जब तक अपने प्रश्न का समाधान न प्राप्त कर लेते, न स्वतः चैन से बैठते, न समाधान दाता को बैठने देते।

निर्भय-परीक्षार्थी :

वार्षिक परीक्षा का समय आने वाला था, दो-तीन माह शेष रह गये थे, एक दिन पूछा माँ ने-तुझे पढ़ाई करनी चाहिए, तेरी परीक्षाएँ नजदीक हैं।

- मुझे सब कुछ याद है।

- याद है तो क्या, और और पढ़ो।

- अब क्या पढ़ूँ?

- सभी किताबें-कापियाँ दोहराता चल, गणित करने की आदत डाल, भूगोल के नक्शे बिना-देखे भर।

- वह तो करता रहता हूँ?

- अच्छा तो स्कूली पढ़ाई के साथ थोड़ी धार्मिक-पढ़ाई भी कर। देख वह पुस्तक रखी है जैन-धर्म की, उसमें से भक्तामर याद करके बताना।

प्रसन्न हो गये तोता। उठाकर ले आये वह जैन-ग्रन्थ और पढ़ने बैठ गये।

जैन-ग्रन्थ पढ़ने का क्रम भी उन्होंने पाठ्यपुस्तकों की तरह बना लिया। दोनों प्रकार की पुस्तकें पढ़ते रहते। कुछ ही दिन बाद बोले माँ से- माँ जी, भक्तामर सुनोगी, मुझे कंठस्थ हो गया है।

- कंठस्थ? सुना भला!

और सुनाने लगे तोता अपनी वाणी से जिनवाणी का वह पद्य जो हर भक्त के लिये आवश्यक होता है। एक तो भक्तामर और फिर तो तोता की आवाज। तल्लीन हो गई माँ। पता ही न चला और तोता जी की स्वर-लहरियाँ प्रथम से अंतिम पद्य तक पहुँच गई आरोह-अवरोह के साथ।

माँ हो गई चकित। अंत मैं मुस्कुराकर बोली-ठीक है, ठीक है। अब स्कूल की पढ़ाई का भी ध्यान रख।

–वह तो है माँ।

–अच्छा बाबा ठीक है, तो जा खेल।

❑ ❑ ❑

चौथी कक्षा के परिणाम घोषित हुए। विद्याधर कक्षा में प्रथम। माँ प्रसन्न। घर–भर खुश।

पाँचवीं में प्रवेश। फिर वहाँ से छठवीं में। खेल और पढ़ाई का क्रम निरन्तर।

❑ ❑ ❑

एक दिन छुट्टी का फायदा उठाकर तोता चले गये पास के मैदान में खेलने। दोस्तों की टोली गिल्ली–डंडा के खेल में रमी थी। तोता को देखा तो सभी चिल्लाने–पुकारने लगे, आजा तोता, आजा।

तोता भी शामिल हो गये बाल–मित्रों के खेल में। डंडे से उचकाकर गिल्ली पर चोट मारना और दूर तक पहुँचाना और फिर किसी लड़के से दाम लेना। बीच–बीच में एक स्वर में चिल्लाना–''दाम न दे दच्चा, कुम्हार का बच्चा।''

शोरगुल और ही ही ... ठी ठी के मध्य इस बार तोता का हाथ गिल्ली पर कुछ ऐसी जोर से पड़ा कि वह कुछ दूर एक गुफा के समक्ष जाकर गिरी। तोता दौड़ते हुए वहाँ पहुँच गये। अपनी गिल्ली उठाकर भागने ही वाले थे कि उनकी नजर गुफा के अन्दर चली गई। वहाँ एक दिगम्बर साधु स्वाध्याय पूर्ण कर उठ ही रहे थे।

तोता ने उन्हें देखा तो भीतर ही भीतर लज्जित हो गया। सोचने लगा–मुनिश्री क्या सोचते होंगे? कहते होंगे–यह मंदिर में तो बड़ा सीधा दिखता है और यहाँ इतना ऊधमी। विद्या सिर झुकाकर भागने लगे कि मुखरित हुए मुनिश्री–बच्चे, भागते क्यों हो, इधर आओ। तोता मुनि श्री महाबल जी के सामने पहुँच गया।

–क्या नाम है तेरा?

–जी, महाराज जी मेरा नाम ... विद्याधर है।

नाम तो अच्छा है, कौन-कौन सी विद्याएँ हैं तेरे पास?

-जी कोई नहीं।

-तो फिर ऐसे ही खेलते रहोगे?

क्या नाम है तुम्हारे पिताजी का?

-श्री मल्लप्पाजी।

-अब तो मैं उनसे बोलूँगा कि विद्याधर का ध्यान विद्या में कम, गिल्ली में ज्यादा है।

-जी मत कहिये, मेरा ध्यान विद्या में भी है।

-अच्छा? क्या-क्या याद है तुम्हें? (मुनिवर करुणाक्त हो उठे।)

यह प्रश्न सुनकर तोता को माँ के ऊपर बहुत खुशी हुई जिनके आदेश से उन्होंने भक्तामर याद किया था। अतः चेहरे पर थोड़ा गर्व लाकर बोले-जी भक्तामर।

-सुना सकते हो?

-जी, अभी।

अच्छा उसे रहने दो। मुझे मोक्ष-शास्त्र और सहस्त्रनाम याद करके सुनाना।

-जी कितने दिन में।

-जब याद हो जाये।

-अच्छा।

मुनिश्री के चरणस्पर्श कर तोता गिल्ली-डंडा छोड़कर मैदान से भाग गये और जिनवाणी का मैदान संभाल लिया।

सुबह शाम वे लगातार जिनवाणी पढ़ने लगे। शाला की किताबों से जिनवाणी घुल मिल गई थी। किसी को पता ही न चलता कि तोता कब पाठ्यपुस्तकें पढ़ता है और कब जिनवाणी।

कुछ ही दिनों में मुनिश्री से प्राप्त सबक पूर्ण कर लिया। एक दिन पहुँच गये डरते-डरते मुनिश्री के पास। नमोऽस्तु कर बैठ गये।

तोता को देखकर मुनिश्री मुस्कराए। फिर बोले-गिल्ली-डंडा बंद है

क्या?–जी अभी बन्द है।

–अच्छा तो अब वह फिर कब चालू होगा?

–जी शायद अब न होगा।

–अच्छी बात है तो। और हाँ, मैंने तुम्हें कुछ पढ़ने के लिए बोला था न?

–जी याद कर लिया है।

–क्या?

मुनि महाबल ने 'क्या' कहा ही था कि तोता कहलाने वाले विद्याधर ने अपने मधुर-मिष्ठ स्वर में वह सुनाना चालू कर दिया जो याद करके आये थे। वे सुनाते रहे, वे सुनते रहे। अंत में मुनिश्री बहुत प्रसन्न हुए तोता पर। आशीष दिया–तेरा नित-नित आत्म-विकास हो।

माखनचोर नहीं, माखनग्राही :

घर पहुँचे तो देखते हैं दही मथने की तैयारी है। बड़े कलश पर दही रखा है और माँ मथानी को धो रही है। आज मक्खन मिलेगा। मक्खन के प्रलोभन में तुरन्त माँ का हाथ बंटाने का प्रयास करने लगे। माँ भी जानती थी उनके प्रयास की तथा-कथा, सो बोली–जा, जा बाहर खेल, मुझे दही बिलौने दे।

–माँ मैं मदद कर रहा हूँ।

–नहीं चाहिए मुझे मदद। (मन में मुस्काती हैं)

–ओ हो माँ, अच्छा ठीक है मैं मथानी पकड़ लेता हूँ, तू धो डाल।

–मैं ऐसे ही धो लूँगी। (पुनः मुस्कान लेती हैं माँ मन ही मन) विद्याधर कुछ न कुछ काम ढूँढ़ लेते और वहाँ बने रहते, जहाँ माँ दही का बिलोड़न करती थीं। ज्यों ही कलश में नैनू (मक्खन) आ जाता, वे तुरन्त बैठ जाते कलश के पास। आँख नैनू पर रहती।

माँ कभी उनकी आशा में निराशा न घोलती, मक्खन उठाकर दे देती और वे यशोदा, मैया के लाड़ले, किशन की तरह देर तक मक्खन का आनन्द लेते रहते बिना चुराए।

मक्खन क्या है? दही का सार तत्त्व ही है न? विद्याधर की दृष्टि कभी थोथे पर नहीं रही, सार चाहने वाला यह किशोर एक दिन सारे संसार को संसार के सार का दिग्दर्शन कराएगा कौन जानता था!

❑ ❑ ❑

कक्षा छठवीं उत्तीर्ण कर वे सातवीं में पहुँच चुके थे।

धार्मिक भावनाएँ प्रकाशित :

पीलू बनाम विद्याधर बनाम तोता जी उस समय तक ब-मुश्किल बारह वर्ष के हुए होंगे कि उनके धार्मिक-भाव और स्पष्ट होने लगे। हुआ यह कि आचार्यवर्य देशभूषणजी महाराज ससंघ सदलगा पधारे हुए थे। प्रवचन और अन्यान्य-धार्मिक कार्यक्रम चलते रहते थे।

दक्षिण-भारत की परम्परानुसार वहाँ बारह वर्ष के बच्चों को एक विशेष संस्कार से संस्कारित किया जाता है, जिसे 'मूँजीबंधन' कहते हैं। इसके अनुसार बारह या उससे ऊपर उम्र के किशोर मूँजीबंधन के दिन उपवास करते हैं, नाई से बाल कटाते हैं, चोटी रखते हैं, सफेद धोती पहनते, कंधे पर दुपट्टा डालते, फिर सारे घरों से जाकर भिक्षा मांगते है। भिक्षा से प्राप्त अन्न से भोजन बना कर लेते हैं और अन्य कुछ नहीं खाते।

आचार्यश्री देशभूषण महाराज की उपस्थिति का लाभ लेते हुए समाज के लोगों ने मूँजीबंधन-कार्यक्रम तय कर डाला। देशभूषण महाराज के सान्निध्य से बाल-संस्कार गहराई तक पहुँच सकेंगे-सब यही सोच रहे थे।

बात तोता जी तक पहुँच गई। देशभूषणजी की उपस्थिति में कार्यक्रम हो और उसमें तोता जी न सम्मिलित हो ऐसा हो सकता है? वे तुरन्त बड़े भाई महावीर के पास पहुँचे, बोले-हम लोग भी मूँजीबंधन कराएँ?

बड़े भाई उसी के स्वर में स्वर मिलाकर बोले-मूँजीबंधन कराएँ! पहिले पिताजी से पूछा?

-चल अभी पूछ लेते हैं। दोनों ने पिताजी के समक्ष उपस्थित होकर पूछा तो मल्लप्पाजी अचकचा गए। उनके समक्ष बालकों का उपवास और

सात घर की भिक्षा वाली कठिनाई नग्न खड़ी थी। उन्हें निमिष-मात्र में फूल से बच्चों के मुख कुम्हलाते हुए दिखने लगे जैसे अभी-अभी उपास किया हो उनने। सो बोल पड़े-नहीं नहीं, अभी नहीं जरा और बड़े हो जाओगे, तब। बोले तब तोता जी-'बड़े तो हो गए। आचार्यश्री कह रहे थे बारह वर्ष के बाद मूँजीबंधन कराना चाहिए।' फिर विनम्रता से बोले-हमें जाने दो न अन्ना जी।

मल्लप्पाजी तोता की विनम्रता का रहस्य समझ गये थे अतः आवाज को कड़क बनाये रहे और फटकारने लगे-नहीं, कोई जरूरत नहीं मूँजीबंधन की। मैं खुद बाद में करा दूँगा।

दोनों बालक चुपचाप लौट पड़े। मगर तोता परेशान थे-क्या पता देशभूषणजी महाराज अब कब आएँ? अभी उनके सान्निध्य का आनन्द ही और है।

आखिरकार वे अपने भाव न दबा सके और कार्यक्रम देखने के उद्देश्य से बड़े भाई के साथ दूसरे दिन वहाँ जा पहुँचे। बालकों की भीड़ वाले भाग में वे सबसे आगे बैठ गये। उनकी जिज्ञासा से भरी हुई बड़ी-बड़ी आँखें बारबार देशभूषणजी को देख रही थीं। देशभूषणजी भी बालकों के मध्य स्वर्ण सी आभा वाले एक बालक को देख रहे थे, जिसके मुखमंडल पर वह भव्यता शोभा बिखरा रही थी जो अन्यों के चेहरों पर न थी। नेत्रों का कार्य चल ही रहा था कि आचार्यवर्य की प्रेरणा ज्ञापित करते हुए एक सज्जन ने माइक से कहा-जो बालक मूँजीबंधन करा रहे हैं, वे सामने के खाली स्थान में आकर बैठ जावे।

तोता खड़े होने लगे और बीच में ही अग्रज से बोले-चल भैया, वहाँ बैठे। झल्ला पड़े महावीर-पिताजी ने मना किया है न? नहीं कराना।

महावीर न उठे। तोता उठकर आगे बढ़ गये। धीरे-धीरे तीस बालक वहाँ एकत्र हो गये।

आचार्य देशभूषण महाराज के चरणों के सान्निध्य में पंडित जी ने जनेवर/ जनेऊ पहनाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहिले उनने उसी

बालक को आमंत्रित किया, तोता उठकर उनके समक्ष खड़ा हो गया। सोने की तीन लरों से गुंथित चमकता हुआ जनेऊ पंडित ने उठाया और विधिवत् तोता को धारण करने दे दिया। फिर अन्य बालकों को सूत के जनेऊ धारण कराये गये। (था वह विचित्र संयोग)

उस रोज आत्मप्रेरणा ने स्थान पाया प्रथम और जनेऊ पाया स्वर्णिम। सब लोग आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे। तोता मुस्करा रहा था। मल्लप्पाजी श्रावकों के मध्य बैठे बुदबुदा रहे थे मुस्कराकर-मैं तो जानता था कि यह लड़का न मानेगा, वह जनेऊ धारण करके ही रहेगा। बड़ा जिद्दी है। मगर उन्हें यह नहीं मालूम था कि यह सुपुत्र कुछ ही वर्ष बाद उन्हीं गुरुवर से ब्रह्मचर्य-व्रत लेगा और बाद में उन्हीं के कर कमलों से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण करेगा। (सच तो यह है कि तोता जिद्दी नहीं, संस्कारवान था।)

संस्कार का प्रथम स्पर्श हो गया था। यहाँ, बालक विद्याधर को निर्ग्रंथ के समक्ष, जनेऊ की लरें उन्हें कुछ नया सोचने-समझने की भूमि जुटा रही थी।

मोह के मारे परिवारजनों ने साधना-पथ पर बढ़ रहे पथिक को हर कदम पर रोकना चाहा, परन्तु वे रुके नहीं, पैर बढ़ते ही गये और एक दिन पैर बढ़कर चरण हो गये।

एक कलाकार जीवंत हुआ :

बालक विद्याधर पर संस्कारों की छाप सुस्पष्ट दिखने लगी थी, वह हर जगह झलक भी जाती थी, चाल-ढाल में, बोलचाल में, हाँ हर स्थान पर। दौड़ना, साइकिल से घूमना, टेबल टेनिस और आँख-मिचौली खेलना, कभी वृक्षों पर चढ़ना, कभी टीलों से ढाल की ओर सरपट दौड़ना व कभी-कभी तकली चलाना तो कभी-कभी गिल्ली डंडा भी उठा लेना। सर्वाधिक प्रेम था शतरंज से, बच्चों के मध्य वे शतरंज के बादशाह माने जाते थे। चित्रकला में भी श्रेष्ठ रुचि थी।

एक दिन जिद कर बैठे बालक-विद्याधर अपने पिताजी से-मुझे तो

कलर पेंसिल चाहिए।

– क्या करोगे?

– चित्र बनाऊँगा।

– बनते भी है?

– हाँ बनते हैं। आत्म–विश्वास से बोल पड़े विद्याधर।

पिता से न रहा गया, ताड़ने का समय जो मिल गया था, सो बोल उठे– अच्छा पहले एक चित्र तैयार करके बतलाओ।

– शीश, पेंसिल से?

– हाँ शीश–पेंसिल से।

विद्याधर ने एक पत्रिका खोली, उसमें जो चित्र उन्हें कलात्मक लगा उसे उतारने लगे कागज पर। कुछ ही देर में सुन्दर चित्र बनाकर प्रस्तुत कर दिया पिताजी के समक्ष।

अब पिताजी क्या कहते, सो चुपचाप उठकर चल दिए कलर–पेंसिल खरीदने।

बहादुर बालक :

एक दिन एक ऊँचे स्थान से नीचे धूल में कूदें तो लोहे का टुकड़ा भाले की तरह घुस गया पैर में। पंजे के आर–पार हो गया। अन्य लड़के देखकर घबड़ा गये। विद्या ने खींचकर निकालना चाहा तो वह न खिंच सका। तब तोता जी लंगड़ाते हुए घर पहुँचे। बतलाते हैं माँ को, यह तो नट–बोल्ट की तरह कस गया है। देखकर विह्वल हो गई माँ। किसी तरह उस लोहे के पैने लम्बे टुकड़े को निकलवाने की व्यवस्था की गई। खूब रक्त बहा।

दो वर्ष तक दर्द रहा, तोता जी टहकते–टहकते चलते थे। एक पैर सोच समझकर जमा लेते थे तब दूसरा उठाते थे। लोग मजाक में कह देते–सम्हालकर पग धरते हैं, जैसे ईर्या–पथ शुद्धि पालन करने की आदत डाल रहे हों।

उनकी चाल की बदलाहट देखकर अनुज अनन्त खूब हँसता परन्तु

धीरे-धीरे अनन्त वह चाल देखने के अभ्यस्त हो गये, सो बाद में फिर हँसी आती न ठिठोली करते, क्योंकि अनन्त ने विद्या की जो चाल देखी वह कुछ और ही बोध करा रही थी। गिल्ली डंडा के शौक के साथ मेला ठेला के शौक ने भी घेर लिया विद्या को, दस-बीस मील की दूरी के मेले मित्रों के साथ साइकिल पर चलकर देखने पहुँच जाते। उनके साथ चहल-कदमी में आनन्द लेते पर समय पर घर लौटते। इतना ही नहीं मेला-ठेला देखने के बाद भी घर के काम-काज, पढ़ाई और मंदिर का उपक्रम कभी न भूलते। कभी कोई अच्छी फिल्म आती तो उसे भी देखते। मगर फिल्म देखकर लौटते समय मन में संकोच ले आते कि आज की पढ़ाई गई।

❑ ❑ ❑

धूमधाम से सातवीं कक्षा पास कर ली। यह कि उस समय जितनी कक्षाएँ थीं सदलगा की शाला में, वे उत्तीर्ण की जा चुकी थी विद्या द्वारा।

मल्लप्पाजी को आगे की पढ़ाई की चिन्ता लग गई थी। सोच में पड़ गये थे। बच्चा कोमल है, रोज-रोज सदलगा से तीन मील दूर बेड़कीहाल के हाईस्कूल तक कैसे जायेगा? सड़क की भीड़ मोटर ठेलों का रेला। इन सब के मध्य से होकर कैसे जायेगा यह तोता पढ़ने?

पर तोता तोता थे, उड़कर बतला सकते थे, सो उनने यह भी कर दिखाया बोले-पापाजी आप चिन्ता न करें, मैं साइकल से जाऊँगा।

-तेरी साइकल ही तो मेरी चिन्ता है।

-कैसी चिन्ता? मुझे साइकल चलाना आता है।

-आता तो है, पर सड़क की भीड़ में चूक गया तो?

-नहीं चूकूँगा, देखकर चलाऊँगा।

-अच्छा विचार करूँगा। विद्याधर का नाम माध्यमिक शाला से उठकर पहुँच गया हाईस्कूल में। जाने लगे रोज साइकल से। साथ होते कुछ दोस्त। कभी राजकुमार व मारुति साइकल का साथ देते, तो कभी शिवकुमार व तम्हा अपनी कार से उन्हें बेड़की ले जाते।

एक दिन मल्लप्पाजी लौट रहे थे बेड़की से। रास्ते में जो दृश्य देखा

तो देखते ही रह गये। विद्याधर उड़ते हुए चले जा रहे हैं। वह उड़ना ही तो हुआ। साइकल तेज गति से दौड़ा रहे हैं। दोनों हाथ छोड़कर। हाथ दांये-बांये हवा में लहरा रहे हैं, बस्ता पीछे दबा हुआ है, साइकल भाग रही है, विद्या प्रसन्न हो हँस रहे हैं। मल्लप्पाजी ने देखा वह दृश्य तो घबड़ा गये। यह तो कभी भी चूक सकता है। घर जाकर श्रीजी को महावीर और तोता की होशियारी बतलाते रहे। प्रतीक्षा थी उनके लौटने की। उस रोज वे उसकी और महावीरप्रसाद की प्रतीक्षा ही करते रहे। ज्यों ही लौटे तो उनके साथ-साथ, मित्रों तक को लताड़ डाला-यह भी कोई साइकल का चलाना हुआ। हाथ मुँह तोड़ना है क्या अपना? खबरदार जो आज से साइकल निकाली आप लोगों ने!

मल्लप्पाजी डाँटते रहे, तोता जी धीरे से अपनी माँ के पास जाकर बैठ गये जैसे कुछ हुआ ही नहीं। माँ कभी तोता की ओर देखती, कभी महावीर की ओर, कभी मल्लप्पाजी की ओर। विद्या माँ की ओर ऐसा देखते जैसे उसने साइकल चलाई ही न हो, पिताजी ऐसे ही डाँट रहे हों। माँ देखती रही और उन्हें याद आ गया हजारों वर्ष पुराना वह क्षण जब दही चुराने वाले नन्हें से कृष्ण ने अपनी प्रिय माँ यशोदा को सफाई दी थी- ''मैया मेरी मैं नहीं माखन खायो।'' श्रीजी को यही लगा कि विद्या की आँखें यही कह रही हैं-''माँ मैंने साइकल ही नहीं चलाई, फिर हाथ छोड़ने का सवाल ही नहीं उठता। पिताजी ने किसी अन्य बालक को साइकल चलाते देखा होगा, मैं तो स्कूल में था।''

नहीं मालूम था उस क्षण मल्लप्पाजी को, नहीं ज्ञात था श्रीजी को कि हेंडल छोड़कर साइकल चलाने वाले हाथ, एक दिन हँसते हँसते यह सांसारिकता भी छोड़ देंगे, वह तो अभ्यास मात्र था। कुछ छोड़कर प्रसन्न होने का अभ्यास। सांसारिकता छोड़कर संसार में चलते रहने का अभ्यास।

काफी देर बाद, तुनककर बोले मल्लप्पाजी-सुन रे विद्या, कल से तुझे साइकल नहीं दी जायेगी। विद्या मुस्काये फिर माँ के पीछे खड़े होकर बोले-आप क्यों डरते हैं पिताजी मैं बड़ा हो गया हूँ।

उसके मन में बड़प्पन का नद था :

'बड़ा' शब्द सुनकर श्रीजी बोल पड़ी–हाँ तू काफी बड़ा हो गया है, साइकल से भी बड़ा। फिर मल्लप्पाजी का ध्यान बंटाने के उद्देश्य से मुखरित हुई उनसे–सुना आपने, यह बड़ा हो गया है, अब इसके लिए हवाई जहाज लेनी पड़ेगी। मल्लप्पाजी की सामान्य करने की दिशा में श्री जी ने अपनी वार्ता जारी रखी–ये तो जब चौथी में था, तभी बड़ा हो गया था। है आपको याद। तीन साल पहिले की बात है यह मेरे साथ पड़ोस वाली दीदी के यहाँ बैठा था। उनके यहाँ नेहरू जी की काफी बड़ी फोटो है। उसे देखते देखते, मालूम इसने क्या कहा था?

–क्या कहा था? पहले पूछा था यह किसका चित्र है? जब मैंने बतलाया यह बहुत बड़ा आदमी है अपने देश का, इनका नाम है पं० जवाहरलाल नेहरू। तो मेरे चेहरे पर उनके प्रति उमड़े सम्मान को देखकर यह बोला था–हम भी बड़े आदमी है, हमें भी नेहरू कहा करो।

ओ, ओ, तो यह ऐसा बड़ा आदमी है इसीलिए हेंडल छोड़कर साइकल चलाता है। मल्लप्पाजी का इतना कहने पर घर के सभी लोग हँस पड़े। विद्याधर माँ की ओट में हो गए। परिवार हँसता रहा।

❑ ❑ ❑

रात स्यानी होती जा रही थी और चारों दिशाओं में स्याही बरस रही थी, इतनी कि हाथ को हाथ न सूझ रहा था। सघन कालिमा के आँचल को ओढ़कर सदलगा के सम्पूर्ण निवासी सो रहे थे, तब भी मल्लप्पाजी की आँखें निद्रा नहीं स्वीकार रही थीं, वे अंधकार में प्रकाश की कोई किरण खोज रही थीं। तभी श्री जी ने मृदुल–मंद आवाज में पूछा–नींद नहीं आ रही?

–नहीं आ रही है। तुम्हें भी नहीं आ रही क्या?–हाँ नहीं आ रही। बोली श्री जी।

–कारण?

–जाने क्या कारण।

–मैं जानता हूँ।

–क्या?

–तुम्हें विद्याधर की चिन्ता हो रही है।

– हाँ सच है स्वामिन्। मुझे उसकी ही चिन्ता है। बड़ा नटखट है। फिर सम्हल कर बोली–और तुम्हें कौन सी चिन्ता है?

– वही।

– वही मतलब? इस बार श्रीजी इस तरह बोलीं कि अन्य सदस्य न जाग जाएँ आवाज सुनकर।

–मुझे इसके 'बड़े' बन जाने की चिन्ता है। साइकल चलाता है बड़ा है, नेहरुजी की फोटो देखता है तो बड़ा है, मित्रों के साथ कैरम बोर्ड खेलता तो भी बड़ा सिद्ध हो जाता है जीतकर। उस दिन का किस्सा याद है श्री तुम्हें, जिस दिन यह शिवा और तुम्हा के साथ शतरंज खेलता–खेलता उनके ताऊजी से भिड़ गया था और उस दिन भी उन्हें हराकर बड़ा बन गया था।

–कौन ताऊ? लोकप्पा जी?

–हाँ, इसने लोकप्पा जी को हराकर किशोर–अवस्था में ही बड़ा होने का स्पष्ट संकेत किया है। याद है तुम्हें श्री, जब यह प्रायमरी में था, तब भी बड़ा बन जाता था, चौथी कक्षा की बात है, परीक्षा सामने थी, वह तब खाना खाने भर घर आता था, और पढ़ना–लिखना सोना सब वहीं अपने शिक्षक के पास करता था। शाला में पढ़ने के बाद उनके घर चला जाता था। वहीं पढ़ता वहीं सो जाता। भोजन करने घर आता, वह भी तो इसका बड़प्पन था। कहाँ से सीखा इसने यह बड़ा होना, बड़ा बनना। (शाला में प्राध्यापक श्री मल्लूजी श्री मल्लप्पा के मित्र थे)।

देखो न, छह साल की उम्र से मारुति इसके साथ लगा है, गरीब है बेचारा। तो विद्या समय पर उसे चाय–पान, कभी नास्ता, कभी भोजन कराता रहा है, यह बड़प्पन भी इसमें कैसे आ गया। क्यों रखता रहा है यह उसका इतना ध्यान।

सुनो, इसमें बड़प्पन के लक्षण जन्मजात हैं और फिर मुझे भी तो एक स्वप्न आया था जब यह गर्भ में था। जरूर यह बड़बोला 'बड़ा' बनेगा।

छोटों के प्रति वात्सल्य भाव, बड़ों के प्रति आदर और सेवा का भाव, निराश्रितों के प्रति सहयोग का भाव, धनिकों के प्रति समभाव, मंदिर के प्रति लगाव, शास्त्रों के प्रति आसक्ति, मुनियों के प्रति भक्ति, तीर्थों के प्रति अभिवंदना का भाव... इसे भविष्य में अवश्य ही 'बड़ा' बनने के संकेत करते हैं।

–अच्छा है, बनाओ उसे बड़ा। मगर उसे कल समझा देना कि वह हेन्डल पकड़कर ही साइकल चलाए अन्यथा मैं ...।

–अरे बाबा, इतनी रात में नाराजगी अच्छी नहीं, सो जाओ।

–अच्छा। सो जाता हूँ मगर यह तो बताओ कि बीस एकड़ जमीन से यह कितना 'बड़ा बन सकता है। यों यह कम नहीं है, गन्ना–तम्बाखू और मूँगफली जमकर पैदा होते हैं, यह चाहे तो सचमुच बड़ा बन सकता है, दीगर व्यापार या सर्विस तो अपने यहां कोई करता नहीं, पर थोड़ी–सी साहूकारी तो है ही।

समझते क्यों नहीं, स्वामिन्। यह संसार–क्षेत्र से परे, धर्म–क्षेत्र का 'बड़ा' बन सकता है।

हँस दिये मल्लप्पाजी। धर्म–क्षेत्र का? देखें क्या होता है। वैसे वह अपने सहपाठी मारुति के साथ शाम सात बजे मंदिर जाता है तो ग्यारह के पहले नहीं लौटता, पंचकल्याणकों को भी खूब जाता है, साधु–संतों के मीलों चल चलकर दर्शन करता है, ध्यान और अध्ययन करता ही है, सच कहीं......।

बातें करते–करते दोनों चुप हो गये। धीरे–धीरे कमरा में भी वही सन्नाटा छा गया जो सारे नगर में छाया था। कमरे के अंधेरे में श्री जी की आँखों में कमल खिल रहे थे। कमल खुलते, खिलते। देखने वाला कोई न था। काश अंधकार ने आँखें पाई होती तो श्री जी के नेत्र कमल वह अवश्य

देख पाता। पर अंधेरा तो बस अंधेरा था, जिसकी अपनी कोई आँख न थी और दूसरों की आँखों को भी बन्द रखना चाहता था।

विराग के बीज :

कमल फिर खिले। श्री जी के दो नेत्रों में दो कमल। स्मृति के कमल। उन्हें याद आ रहा था शेड़वाल का एक दृश्य। नगर शेड़वाल में उत्साह दौड़ रहा है सड़कों पर। जनता मंदिर की ओर भागी चली जा रहीं हैं। वहाँ आज केशलोंच होगा। चारित्र चक्रवर्ती आचार्यप्रवर पूज्य शांतिसागर महाराज पधारे हैं, उनके मंगल प्रवचनों का निर्झर किसी भी अंधकार को बहा ले जाने में सक्षम है। मल्लप्पाजी और श्री जी पंडाल में बैठे हैं, बीच में बैठा है विद्या।

जन समूह बेचैन है मुनि शांतिसागर जी के प्रवचन सुनने। नौ वर्षीय विद्या भी एकटक देख रहा है मुनिवर को। (दृश्य १९५४-५५ का है) मुनिवर के प्रवचन होते हैं। विद्या टुकुर-टुकुर देखता सुनता है। जैसे सब कुछ आंखों और कानों के रास्ते बहुत भीतर तक ले जा रहा हो। वह खो गया है। बस सुन रहा है, देख रहा है। देख रहा है, सुन रहा है। नहीं, वह अक्षर-अक्षर पी रहा है। बोल रहे हैं मुनिवर, अमृत बरस रहा है, विद्या पी रहा है। वह पूरा प्रवचन जैसे विद्या के लिए हुआ हो। पूरे पंडाल में जैसे विद्या फैल गया हो। हर आदमी की जगह से जैसे विद्या ही देख रहा हो, विद्या ही सुन रहा हो।

समीप बैठे श्रोतागण जितना मुनिवर को देखते उतना ही विद्या की तरफ देखते।

हो गया प्रवचन, लौट गया जन-समूह घरों की ओर। पर विद्या... विद्या ने जाने क्या सुना उस प्रवचन में कि वे लौट पड़े 'निज' घर की ओर। घर में आकर भी वह 'निज' घर की तलाश में दिखा उस दिन।

प्रवचन की प्रभावना। विद्या नौ वर्ष की उम्र में निज-घर का रहस्य समझ गया था। उसी दिन कोई अदृश्य बीज वैराग्य का पहुँच गया था हृदय की उर्वरा भूमि पर।

"तो क्या उसे वह प्रवचन याद होगा"-सोचने लगी श्री जी। रात की कालिमा में से फिर एक आवाज आई-"सोई नहीं अभी तक"। चौक गई श्री जी। फिर सहज होकर भी पूछ बैठीं। "आप भी तो नहीं सोए"?

श्री जी ने अपने स्मृति कमल छुपाते हुए मल्लप्पाजी से पूछा-क्या सोच रहे थे अभी तक?

-"कुछ नहीं, कुछ नहीं"।

-कुछ तो?

-अरे यही, कि एक दिन यह विद्या कह रहा था महावीर से- भैया, हम अकलंक की तरह बनकर धर्म का प्रचार करेंगे।

-तो?

-तो क्या। ऐसी बातों से कभी-कभी मुझे भी लगता है कि कहीं यह कोई बड़ा साधु-महात्मा तो नहीं बन जायेगा!

मल्लप्पाजी की ऊहापोह देख श्री जी ने अनुरोध किया-अच्छा सो जाइये अब, बहुत रात बीत गई।

-सो जाऊँगा, अभी काफी रात पड़ी है। मेले में भी मंदिर खोजने वाले बेटे की चर्चा तो पूरी हो जाए।

-कैसा मेला और मंदिर?

मेला देखने गया था। मेला का विशाल क्षेत्र और भारी भीड़ देखकर जब लड़के भौचक्के रह गये थे तो इसने सुन्दर सलाह दी थी, कहने लगा- देखो भाई, यदि कोई घूमता-फिरता भीड़ में खो जाए तो चिन्ता न करे, बस इस सामने वाले मंदिर के समक्ष आकर रुका रहे, जब सब यहाँ आ जावेंगे तभी लौटेंगे घर।

आगे बोले मल्लप्पाजी-इसने भीड़ में गुम लड़के को कोई दुकान, कोई नाटक-नौटंकी या कोई अन्य स्थल/स्थान पर पहुँचने का परामर्श क्यों नहीं दिया, मंदिर ही क्यों बतलाया? जाहिर है, मन में जो होगा वही वाणी में आयेगा। भीड़ में भी मंदिर का ध्यान रखने वाला 'प्राण' कल की धर्मात्मा न बनेगा तो क्या बनेगा? उस परामर्श में एक मौन आशय भी तो

छुपा था। 'भटके हुए को मंदिर ही तो उचित होता है, नाटक-नौटंकी नहीं।'

चर्चा सामप्ति पर थी सो उसके बाद एक शांति छा गई कक्ष में। सो गये दो प्राण, एक प्राण के विषय/भविष्य पर सोचते-सोचते।

❑ ❑ ❑

नौ वर्ष की उम्र में जो बीज-वपन हो गया था विद्याधर के मन में, वह धीरे-धीरे प्रेरणा का पौधा बन चुका था। उम्र का परेवा प्राथमिक से माध्यमिक और माध्यमिक से उच्चतर शाला के छप्परों पर उड़ता रहा। पर आत्मा का परेवा रह रहकर जाता मुनि शांतिसागर के उस इंगन (संकेत) की ओर जो विद्या ने नौ की उम्र में समझ लिया था।

तभी तो वह कुछ विशेष अनुशासन लेकर चल रहा था। शाला से लौटने के बाद शाम को मंदिर समय पर पहुँचने का उत्साह। नौवीं तक पढ़े १७ वर्षीय किशोर द्वारा मंदिर जी में शास्त्र पढ़कर सुनाने का क्रम। शाम ७ बजे से रात्रि ११ तक मंदिर के वातावरण में रमे रहने का स्वभाव। घर लौटने पर पिता द्वारा पूछताछ करने पर उदासीन भाव या मौन रखने की प्रवृत्ति, उसे अन्य समवयी-किशोरों से भिन्न ही बतलाती थी।

करुणानिधि :

वह जितना संतोषी दिखता है, उतना ही अक्खड़ हो जाता है, जितना दयालु उतना ही श्रमशील। एक दिन खेत में हल चलाया जा रहा था। अचानक एक बैल कमजोरी के कारण बैठ गया। हरवाहा उसे कील लगी लाठी गुच्छे, उससे पूर्व विद्याधर ने उस बैल को तुरंत हल से ढील दिया। हरवाहा बकबक कर बैठा-अरे भैया, फिर हल कैसे चलेगा?

धैर्यवान विद्याधर मुस्काए और बोले-ऐसा। बैल के स्थान पर वे खड़े हो गये थे और हल का जुआ अपने पुष्ट स्कन्ध पर धर लिया था। बोले चिन्ता मत करो, कार्य चल जायेगा। वह काफी देर तक बैल के स्थान पर हल खींचते रहे।

श्रम, लगन, दया, कर्त्तव्य के कई रंग देखने मिले उस रोज उनकी चर्या में।

साधुओं के प्रति लगाव :

दो-एक वर्ष में सदलगा के नागरिकों को किसी न किसी मुनि के चातुर्मास स्थापना का लाभ मिलता था। एक क्रम बन गया था गाँव के लोगों के लिए। लोग धर्म और सेवा का पूरा-पूरा लाभ उठाते थे। पर वे चातुर्मास विद्या के लिए हृदय परिवर्तन के नये-नये प्रेरणा-स्रोत दे जाते थे। मुनियों का सान्निध्य उसे घरबार छोड़, तपस्या की राह पर चलने का मौन आमंत्रण देता था। उनकी वैयावृत्ति कर उसे अत्यन्त संतृष्टि प्राप्त होती थी, जैसे एक तीर्थ की वंदना ही कर ली हो। मन में साधु की क्रियाओं का आत्मानुभव भी होता चलता था।

एक बार बोरगाँव से खबर उठी कि मुनि श्री नेमिसागरजी ने समाधिमरण स्वीकार कर, समाधि ले ली है। विद्याधर तुरन्त बोरगाँव को दौड़े चले गये। यह सदलगा से आठ किलोमीटर पर है। वहाँ जाकर देखते हैं कि मुनि नेमिसागरजी समाधि-शैया पर विराजमान हैं। विद्यासागर उनके समीप बैठ गये, फिर धीरे-धीरे उनके पैर सहलाने लगे। दिन रात उन्हीं के पास रहे। दूसरे दिन आभास हुआ मुनिजी का स्वास्थ्य काफी गिर चुका है, चेतना कभी भी जा सकती है। विद्याधर ने पैर सहलाने के साथ-साथ उस दिन एक कार्य और किया, पूज्य नेमिसागरजी को णमोकार मंत्र सुनाना प्रारम्भ कर दिया।

अंतिम दिन उनकी चरणरज अपने माथे पर लगाई और अपने भीतर के वैराग्य-भाव को दृढ़ किया। कौन जानता था कि यह बालक भविष्य में बड़े-बड़े महापुरुषों को समाधिमरण की दीक्षा देकर समाधि-सम्राट् कहलाने लगेगा।

वैराग्य के विशाल नभ में उड़ान :

एक दिन सुबह उठकर विद्या ने पिताजी से जयपुर जाने का मन बतलाया।

पिताजी ने ऐसी डाँट-फटकार बतलाई कि विद्या तो विद्या सारा घर स्तब्ध रह गया।

मगर विद्या ऊपर से ही चुप रह गये थे, भीतर-भीतर वे पल-पल तैयारी कर रहे थे मुनि संघ की ओर जाने की। सदलगा के आसपास, कहे दक्षिण भारत में, उस समय कतिपय मुनिसंघ अन्य-अन्य नगरों में विराजित थे, पर विद्या कुछ और ही सोच रहे थे - आसपास किसी संघ की सेवा में पहुँचूंगा तो घंटे भर बाद ही पिताजी भी वहाँ पहुँचकर वापस ला सकते हैं, अतः कहीं दूर ही चला जाए, जहाँ पिताजी जल्दी न पहुँच पायें।

और एक दिन विद्या ने अपने ही पैरों में पंख लगा लिए, उड़ गये किसी अदीठ स्थान की ओर। वह कोई सन् १९६६ की बात है, तब वे २० वर्ष के हो चुके थे, साथ में उनके स्थानीय मित्र जिनगौड़ा भी थे।

सारे घर में चुप्पी सी छा गई। हर सदस्य यह तो जानता था कि वह किसी मुनि के चरणों में ही गया होगा, पर कहाँ? सात दिन तक माता-पिता को भूख न लगी, बड़े भाई का जी न लगा। परिवार तो परिवार, गाँव में बेचैनी बढ़ने लगी। मंदिर का वह स्थान जहाँ पर विद्या बैठकर शास्त्र पढ़ते थे लोगों को बारबार बुलाता सा लगता, जैसे कह रहा हो ढूँढ़ लाओ विद्या को।

❑ ❑ ❑
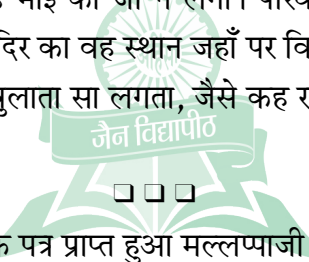
आठवें दिन एक पत्र प्राप्त हुआ मल्लप्पाजी को। पत्र आचार्य प्रवर देशभूषण महाराज का था। आशीर्वाद के बाद लिखा गया था कि आपका सुपुत्र ढाई दिन की सुदीर्घ यात्रा के बाद मेरे पास पहुँच गया है, चिन्ता न करें। व्रत के लिए लगातार अनुरोध कर रहा है। अतः यह पत्र आपका संकेत समझने के उद्देश्य से लिखा गया है।

मल्लप्पाजी की आँखों के आगे एक अंधियारा छा गया। यह अंधियारा तभी दूर हो सकता था जब घर में विद्या नाम का हीरा चमक बिखेरे। हीरा तो पहुँच गया था सैकड़ों मील दूर जयपुर जहाँ देशभूषण महाराज जैसे धर्म जौहरी विराजमान थे।

छलक गये नेत्र मल्लप्पाजी के। बोले महावीर से - बेटे, मैं जयपुर तक जाने की हिम्मत खो रहा हूँ। जाने क्यों आत्म-बल काम नहीं कर रहा

है। तभी बीच में बोल पड़ी भूखी-प्यासी माँ - बेटे महावीर, तुम्हारा छोटा भाई तुम्हीं से मान सकता है। अब हमारे हृदय में शक्ति नहीं, रटन भर रह गई है। (रतन विद्या की)

विद्वान् सुपुत्र ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते अपना कर्त्तव्य समझ रहे थे। समझाने लगे माता-पिता को अभी जाता हूँ जयपुर और देखता हूँ उसको।

कहने को कह गये महावीर जी, मगर सदलगा से जयपुर तक जाना और फिर वहाँ से विद्या को खोज लाना एक टेढ़ा कार्य था उन जैसे सीधे-सादे सज्जन पुरुष को, परन्तु भाई का प्यार क्या कुछ न सहने के लिए होता है? वे करने लगे विचार।

❑ ❑ ❑

खानियां से चूलगिरी तक का वातावरण जयपुर के लोगों में चर्चा पा रहा था। आचार्य देशभूषण महाराज ससंघ यहाँ के वातावरण को धर्ममय बनाये हुए थे। उनके समक्ष विद्याधर उस समय कुछ न थे, थे एक उत्साही युवक।

उम्र और शरीर सौष्ठव देखते हुए उन्हें आचार्यश्री द्वारा कार्य दिया गया-सुबह चार बजे उठकर साइकल से पाँच मील दूर बसे ग्राम से शुद्ध दूध लाना और व्यवस्था-समिति को देना। संघ के सदस्यों के बैठने के स्थान पर सावधानी से झाड़ू लगाना। न हिंसा हो, न वातावरण गंदा हो धूलादि से और ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हुए रहना। विद्याधर वह सब सर्वश्रेष्ठ उत्साह से संपादित करने लगे। शेष समय में चिन्तन। संघ के सदस्यों को आचार्यश्री पढ़ाते थे कभी-कभी पंडित लोग भी पढ़ाते थे। विद्याधर उन्हें पढ़ता देख छटपटाते। विचार करते-काश उन्हें भी कोई पढ़ाता।

एक दिन चूलगिरी पर्वत पर अवस्थित अपने स्थान पर झाड़ू लगाते समय उन्हें मिली एक अधफटी पुस्तक। इस पतली-सी पुस्तक का नाम था-'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' लेखक पंडित गोपालदास जी बरैया। विद्याधर ने छोड़ दी झाड़ू हाथ से। उठा ली पुस्तक। पोंछ-फटकार कर रख ली

पास।

दूसरे दिन दूध लेकर लौटते ही खाली समय में पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। तीसरे दिन एक कड़ा पुट्ठा/कवर/चढ़ा डाला उस पुरानी पुस्तक पर। संघ की सेवा और स्वयं की क्रियाएँ करने के उपरांत जो समय शेष बचता विद्याधर अपनी शर्ट की जेब से निकाल कर जैन-सिद्धान्त-प्रवेशिका पढ़ने लगते। स्व प्रेरणा से रोज-रोज उसे पढ़ते, याद करते और तरज्जुत से धर देते। धीरे-धीरे उन्हें उसका अक्षर-अक्षर याद हो गया। जो याद किया था- वह याद की दृष्टि से नहीं, आत्माध्यन की दृष्टि से था। अतः वह स्थाई रूप से टिक कर रह गया मानस में उनके।

देश-भक्ति से देवेश-भक्ति :

बुहारी लगाने और दूध लाने वाले युवक के भीतर 'जिन-सिद्धान्तों' की प्रविष्टि यहाँ हुई थी। राष्ट्र-बोध भी यहीं जागा था मन में, जब एक दिन दूध लेकर लौटते समय उनकी दृष्टि छात्रों की उन रैलियों पर पड़ी जो गणतंत्र-दिवस के उपलक्ष्य में निकाली गई थी। २६ जनवरी का महात्म्य इसी दिन समझे थे वे गहराई तक।

रंग-बिरंगी सुन्दर पोशाकों में देशभक्त-छात्र मुस्काते से सीनातान कर, सिर ऊँचा कर, चल रहे थे, विद्याधर अपनी साइकल चलाते हुए सब देख रहे थे।

उनके युवा मन को क्षण भर को लगा कि वे भी रैली में शामिल हो जावे। देश भक्ति की लहर उठी मानस में।

तभी विचार आया कि वे जिस पथ पर चल रहे हैं वह कौन-सा बुरा है। श्रमण पथ। जिस पर देश-भक्त भी न्यौछावर होते हैं।

❑ ❑ ❑

रात्रि दस बजे का समय रहा होगा। अचानक आचार्य देशभूषण महाराज की कराह सुनाई पड़ी, विद्याधर संघ के अन्य सदस्यों की तरह दौड़ कर उनके पास पहुँचे। महाराज जी को बिच्छू ने काट दिया था। जहर बढ़ रहा था और बढ़ रहा था - सारे शरीर का कम्पन। दर्द, दर्द, दर्द।

शिष्य-मण्डली उपचार का प्रयास करने लगी। मगर मात्र प्रयास से काम कब चलता है, कर्तव्य भी करना पड़ता है। उपचार की सामग्री पहाड़ी पर तो थी नहीं, वह नीचे तलहटी से लानी थी। विचार चल ही रहा था कि विद्याधर स्वेच्छा से उतनी रात में तलहटी को दौड़ पड़े। ऊँचा-नीचा रास्ता, अंधकार, एकांत, हवा के स्वर, वृक्षों की परछाइयाँ, कुछ भी उन्हें उत्साहहीन न कर सके। वे निर्भय हो दौड़ते चले जा रहे थे, तभी भय का एक बिन्दु सामने उपस्थित हो गया, एक काला नाग फन फैलाए बैठा दिखा पगडंडी में। सहम गए क्षण भर को विद्याधर। दवा लाना अनिवार्य है, लौटना नहीं। सोचने लगे। फिर बुद्धि चातुरी से काम लिया, वह पगडंडी छोड़, दूसरी पगडंडी अपनाई। रास्ता पूरा हो गया।

दवा लेकर लौटे तो याद ही न रहा कि पहली पगडंडी पर सर्प था और दौड़ते हुए हाजिर हो गए महाराज के समक्ष।

दवा तैयार की गई। लेप किया गया महाराज के उस हिस्से पर जहाँ डंक टूट कर रह गया था।

कराहते-कराहते रात का दर्द झेल लिया महाराज ने। सुबह तक आराम लग गया। अन्य शिष्यों से विद्या की तत्परता और सर्प की बात सुनी तो उन्हें विद्याधर की साधु-सेवा के भावों पर, निर्भयता पर, कर्त्तव्य-परायणता की पुष्ट-भावना पर नाज हो आया। काश हर युवक ऐसा बने।

❑ ❑ ❑

कुछ दिनों बाद। महावीर प्रसाद एक संभ्रांत श्रावक को साथ लेकर चल दिये विद्या को लेने। ज्यों-ज्यों उनकी ट्रेन आगे बढ़ती, वे विद्या के भिन्न-भिन्न रूप देखते अपने मानस में। कभी विद्या जाप दे रहे हैं, कभी शास्त्र पढ़कर सुना रहे हैं, कभी किसी मुनि की पद-रज पोंछ रहे हैं अपने सुकोमल हाथों से। देखते ही देखते उन्हें लगा-विद्या पिच्छिका लिए हुए कहीं जा रहा है।

विचारों ने ढाई दिन तक मस्तिष्क को स्वतंत्र न होने दिया और महावीर विचारों में खोये-खोये ही पहुँच गये जयपुर।

मुनि संघ के समीप महावीर पहुँचे तो उन्हें क्षण भर को हर त्यागी-व्रती के चेहरे पर विद्या का चेहरा दिखने लगा। अंत में मोह से अंजी हुई आँखों ने अपने प्यारे भाई को पहचान लिया। एक कक्ष में विद्या जी शास्त्र खोले हुए ध्यान से पढ़ रहे थे। महावीर ने जाकर पकड़ लिये विद्या के दोनों हाथ। हृदय की धड़कन बढ़ गई। उस होनहार बालयोगी को देखकर आँखों ने वात्सल्य जल बरसा देना चाहा, तभी महावीर ने संभाला अपने आपको और मध्यम स्वर में बोले विद्याधर भैया से "भैया, यह शास्त्र एवं यह अध्ययन घर पर भी सध सकता है, तुम्हें जितना समय लेना हो, घर पर लेते रहना, कोई कुछ न कहेगा, पर इधर से चलो। माता-पिता का हाल बुरा है। रो-रोकर उनकी आँखें दुखने लगी हैं। छोटे भाई और बहने तेरी याद करते हैं। इतनी दूर न रहो, घर चलो भैया।"

कभी रामयुग के भरत ने भी राम को इसी तरह मनाया होगा, महावीर के साथ आये हुए श्रावक को लगा। उनकी आँखें भी आर्द्रता से चमकने लगी थीं। इस बार राम उम्र में छोटे थे और जेठे थे भरत।

महावीरप्रसाद की करुणा भरी आवाज सुनकर विद्याजी विचलित नहीं हुए। पूर्ण गंभीरता से बोले-बड़े भैया! मुझे अब कुछ न कहो।

-क्यों? पूछ बैठे महावीर।

क्यों शब्द सुनकर विद्याधर के मुँह से शब्द रूपी पुष्प झरने लगे, मृदु और शांत स्वरों में आगे बोले-'भैया मुझे अपना कार्य करने दो। आप अपना कार्य करें। आप तो जानते ही है कि अनादि काल से इस जीव को हर पर्याय में माता-पिता, भाई-बहिन मिलते रह रहे हैं, वे आगे भी मिल सकते हैं, नहीं मिली तो मुक्ति। इस जन्म में मुझे मुक्ति की तलाश कर लेने दो। आप मेरे निर्णय को गंभीरता से ले, मैं २० वर्ष का परिपक्व युवक हो चुका हूँ। मुझे गृह-पथ की ओर मुड़ने को न कहे, मुझे मुक्ति पथ पर पग बढ़ाने दें। मैं किसी भी स्थिति में घर नहीं लौट सकता, आप प्रयास न करें। आप पूज्य आचार्यश्री से भी कुछ न बोले, यह एक प्राकृतिक निर्णय हैं, इसे प्रकृति की तरह खिलने दें। मुझे आशीष दें कि मैं इस पथ पर पूर्ण सफलता

पा सकूँ।

इतना कह कर मौन हो गये विद्याधर। महावीर जी ने और उनके साथी ने कई प्रश्न किये, कुछ और पूछना चाहा, पर सब व्यर्थ। मौन माने मौन।

महावीर जी विद्याधर की बजाय बार–बार आचार्यश्री के पास जाते कि शायद वे ही कोई रास्ता निकाले। तब तक पता चला कि विद्याधर ने तीन दिन से अन्न जल नहीं ग्रहण किया है और मौन है। बस, शास्त्र पढ़ते रहते हैं। विद्याधर की मौन पुकार आचार्य रत्न देशभूषण महाराज के हृदय पटल से जा–जाकर टकरा रही थी। अतः वे महावीर प्रसाद जी को कोई उत्तर न दे सके। उल्टा पूछ बैठे उन्हीं से–अब क्या होगा, तीन दिन से अनशन है

क्या कहते महावीर? दो बूँद झरा दिए नेत्रों से, आचार्यश्री के आगे और हो गये मौन।

आचार्यश्री भक्ति का प्रभाव देख समझ रहे थे, और पूरा ध्यान दे रहे थे विद्या पर। महावीर हो गये किंकर्तव्यविमूढ़। किससे कहें। विद्याधर मौन हैं, अनाहार है। आचार्यश्री भक्त की पुकार पर स्थिर हैं।

पुनः एक बार महावीर जी ने आचार्यश्री के समक्ष निवेदन किया विद्याधर से। विद्याधर कुछ कहना नहीं चाहते थे, पर जब आचार्यश्री ने उनकी ओर देखा तो विद्या छटपटा गये और हाथ जोड़कर संकेत किया कि अब मैं घर नहीं ही जाऊँगा। आचार्यश्री ने कहा–मौन से कार्य नहीं चलेगा, तुम्हें अपने भाई के साथ अभी घर जाना चाहिए। तब तोड़ा मौन विद्याधर ने – आचार्यश्री आप मुझे ब्रह्मचर्य का व्रत प्रदान करें, अब मैं घर नहीं जाऊँगा। फिर महावीर जी की ओर मुखातिब हुए–भैया, आप घर जाइये, मेरे स्पष्ट इंकार को समझिये और मुझे अब कुछ मत कहिये।

मौन रह गये महावीर। विवश हो गये आचार्यश्री। तीन दिन से अनाहार देख उन्होंने एक सादे समारोह में ही विद्या को ब्रह्मचर्यव्रत प्रदान कर दिया।

वापस हो गये महावीर घर की ओर। देशभूषण के देश में उस रोज एक और बाल-ब्रह्मचारी पैदा हो गया। बाल ब्रह्मचारी विद्याधर। जिसने माता और बहिनों के अलावा किसी नारी को देखा ही न था। जिस किसी नारी को देखा भी तो उसमें माता या बहिन के ही दर्शन पाये थे। किसी से कभी प्रभावित ही न हुआ, हुआ तो माँ और बहिन नाम के शब्दों से। बस।

❑ ❑ ❑

बच्चा चढ़ा हिमालय :

स्व-विवाह की बात कभी सोची ही नहीं। विवाह की उम्र आने से पहिले आ गये वे विचार जो वधू का नहीं, मुक्ति-वधू का, परिचय कराने में समर्थ थे।

पुरा-पड़ोस, नगर-विनगर, रिश्तेदार-मित्र सभी विस्मित। अभी तो शादी की उम्र हो रही थी, परन्तु उसे वैराग्य की धुन आ गई।

विद्याधर का नव-वैराग्य सभी को खटक गया, लगा एक नन्हें बच्चे को जैसे हिमालय पर चढ़ने कहा गया हो।

माता-पिता भी चकित, ऐसा जानते तो उसकी शादी कर सकते थे। पर कैसे करते? उसकी उम्र ही क्या थी? उसे तो आगे पढ़ाने के विचार में थे। परन्तु...। ममतामयी मां बोली-बाल विवाह हो जाता तो बाल-ब्रह्मचारी न बन पाता। वात्सल्य विभोर पिता बोले- कैसे न बन पाता? जिस घर में कभी बाल-विवाह को प्रोत्साहन नहीं दिया गया, उस घर में कम उम्र में शादी की चर्चा कैसे संभव होती पगली! उसे गृहस्थ नहीं बनना था, इसीलिए वह नौ वर्ष की उम्र से ही अकलंक-निकलंक की चर्चा करता रहता था।

महावीरप्रसाद जिस दिन जयपुर से वापस घर आए थे, उसी दिन से सबकी आँखें आँसू बहा रहीं थीं। मल्लप्पाजी और श्रीजी बच्चों से मुँह छुपाकर रात में रोते, तो बहिनें शान्ता और सुवर्णा चाहे जब अनमनी हो जातीं अपने प्यारे भाई की याद में। भाई अनन्त एवं शांतिनाथ अपने से बड़े विद्याधर का वियोग सहज नहीं ले पा रहे थे। मित्रों से चर्चा करते तो आँखें

भर आतीं। घर लौटते तो पूरा घर खाली-खाली लगता।

जैसे समय को लकवा मार गया हो। किसी का मन ही न लगता काम-काज में।

एक दिन शान्ता पढ़ रही थी शास्त्र। उसमें किसी विद्याधर की चर्चा पढ़कर अपने विद्याधर का स्मरण कर बैठी और खूब रोईं।

पुत्र बड़े होते हैं, पढ़ लिखकर तैयार होते हैं तो माता-पिता को उनसे धंधा या सर्विस कराने की चिन्ता हो जाती है। मगर विद्याधर ने तो वह अवसर भी न दिया। दुख था पिता को। अफसोस था माता को। माँ को अचानक स्मरण हो आया, कुछ समय पहिले की बात है उसके मित्र पुंडलीक ने पूछा था विद्या से-पढ़ चुकने के बाद क्या कार्य करेगा?

कई बार पूछने पर बतलाया था सोलह वर्षीय विद्या ने-देख भाई, कार्य ऐसा होना चाहिए जिसमें कोई मायाचारी न हो, हिंसा न हो, पाप न हो।

-तो क्या कपड़े की दुकान खोलेगा?

-नहीं भैया, उसमें भी झूठ बोलना पड़ेगा। वकालत करेंगे तो उसमें भी झूठ। तब बीच में ही मारुति बोल पड़ा था-सुनो विद्या भैया , न हो तो पेट्रोल पम्प खोल लेना। बस सरकारी-भाव से बेचना और झूठ बोलने से बचे रहना।

प्रस्ताव सुनकर क्षण भर को विद्या गंभीर हो गये थे, फिर बोले-हाँ ठीक है करेंगे तो ऐसा ही कार्य करेंगे, मगर अभी कुछ नहीं कहते।

उक्त वार्तालाप से ही तो माँ ने जाना था। विद्या वचन में बँधना नहीं चाहता, उसने वचन-गुप्ति प्रारम्भ कर दी है। और उसी दिन माँ ने जान लिया था कि उसका चरम लक्ष्य अध्यात्म है, केवल अध्यात्म।

मल्लप्पाजी को भरा हुआ घर भी सूना लगने लगा था। बैठे-बैठे याद कर रहे थे विद्या की। एक रोज विद्या को खेत जाने बोला तो विद्या झुंझला पड़ा था-पिताजी मुझे खेत न भेजा करो। वहाँ नौकर पूछ-पूछ कर पौधों पर पाऊडर/ औषधि/छिड़कता है, कभी कुछ गलत सलत करता है तो

बतलाना भी पड़ता है, अतः मुझे खेत न भेजें।

– तो इससे क्या होता है बेटे?

– तब विद्या ने मुस्काकर कहा

–औषधि से जीवों की हत्या/हिंसा होती है, मुझे अनुमोदन या मार्गदर्शन कर जीवघात का पाप करना पड़ता है। अतः रहने दें पिताजी।

–तो फिर कौन सा गृहकार्य करेगा?

–मैं सब्जी खरीदकर ला सकता हूँ। दुकानों से विविध सामग्री ला सकता हूँ, फल–फूल ला सकता हूँ।

विद्या ऐसे बतला रहे थे जैसे वे कोई बहुत बड़े कार्य सम्पन्न कर देने का दावा कर रहे हों और पिताजी उसकी कोमल भावनाओं पर ध्यान देते हुए मुस्का रहे थे। आनन्द ले रहे थे, बाल–बोध का। पर उन्हें क्या मालूम था कि उसका यह बालबोध भविष्य में जीवन–बोध बनकर उपस्थित होगा संसार के समक्ष।

❑ ❑ ❑

एक स्वप्न : एक सोच :

सन् १९६७ की बात है। श्रवणबेलगोला में भगवान् बाहुबली की उतंग प्रतिमा का परम्परानुसार महामस्तकाभिषेक। नगर प्रांत और देश उमड़कर आ गया था बाहुबली की इस तपःनगरी में। अन्यान्य श्रावकों का धर्म–मेला। व्रतियों, तपस्वियों और मुनियों का शांति–स्थल। सारा देश उपस्थित हुआ जा रहा था वहाँ। विदेशों के भी कुछ जन पहुँच चुके थे। ऐसे पावन स्थल पर आचार्यश्री देशभूषण महाराज क्यों न पहुँचते? वे समय पर ससंघ पहुँचे और धर्म–लाभ की दिशा में लीन हो गए। हर आंख महामस्तकाभिषेक देखने को सचेत। हर प्राण अभिषेक की दुग्ध धार के लिए आकुल। धाराएँ जो मूर्ति के मस्तिष्क से चलकर चरणों तक आती हैं और चरणों से बहकर बन जाती हैं गंधोदक। प्राण–प्राण को चाहिए वह गंधोदक। गंधोदक ही प्राण हो जैसे।

सदलगा में रुकी हुई चार आँखें लाखों मानवों की भीड़,

श्रवणबेलगोला, बाहुबली, महामस्तकाभिषेक की दुग्धधार के साथ-साथ कुछ और भी देख रही थीं- घर बैठे। ये आँखें थीं मल्लप्पाजी की और श्री मति जी की। लाखों के समूह में वे उस छवि को देखना चाहती थी जिस पर अपना-अधिकार जताने का अधिकार था उन्हें। खोजी आँखें शान्त न थीं, पहले उनने खोजा पूज्य देशभूषणजी महाराज को। अब बारी उस छवि की थी, हाँ अपने हृदय-खण्ड की थी। पहुँच गई दृष्टि भारी-भीड़ चीरकर उस छवि के निकट जिसे अब तक प्रेम से विद्या कहा जाता रहा है। जिसे घर बुला लेने की साध थी उनके मन में।

माँ को विश्वास था कि उन्हें देखकर विद्या भाव-विभोर हो पड़ेगा और तभी वह छाती से लिपटा सकेगी। (सोच रहीं थीं श्री जी)

पिता को ज्ञात था कि विद्या उन्हें देखकर खिंचा चला आयेगा उनकी तरफ और अपना पथ बदलकर उनके साथ सदलगा का पथ धारण करने का पितृ-संकोच उँड़ेल देगा आँखों से। (मल्लप्पाजी सोच रहे थे)

दम्पत्ति अपने मन में अपने ही विचारों की मूर्ति बनाकर सजा रहे थे सो अगले क्षण सोच बैठे - आचार्य देशभूषण महाराज से क्षमा माँगकर, बच्चे को घर ले जाने में वे सफल हो जाएंगे। मिल गई चार आँखें दो आँखों से। दो आँखें क्षणभर तो चमकीं, फिर झुक गईं अपने ही 'स्व' के समक्ष। आँखें विद्याधर की। जैसे दिया क्षण भर को जलाकर बुझा दिया हो-लगा मल्लप्पाजी को। अनुभूत हुआ श्रीजी को। दोनों ने फिर अपनी दृष्टि पसारी और आँखों की रेखा जोड़ दी विद्या की आँखों से। देर तक निहारते रहे, पर फिर न उठी वे आँखें। वे जिस में लीन थी, उस दृश्य का महत्त्व अधिक रहा होगा, अतः लीन ही रही आई, न उठीं, न मिलीं। दम्पत्ति देर तक निहारते रहे युवा विद्या को। दो आँखों की दृष्टि फैलकर उन तक आई। तड़प गये वे। उन्हें लगा जो अपना था वह पराया हुआ... हुआ जा रहा है...। (सोच चालू था) छूटते को पकड़ने की कोशिश में बोल पड़े मल्लप्पाजी विशिष्ट दुलार से-बेटे विद्या! गूँज गई आवाज वहाँ के पहाड़ी-अंचल में। जैसे कोई शब्द पहाड़ की चोटी से तलहटी की ओर लुढ़काया

गया हो किसी प्रयोग-विशेष के लिए। शब्द की तरंगों ने किये झंकृत कर्णपट विद्या के। विद्या हो गये क्षण घर को विचलित। दो आँखें फिर उठीं और जुड़ गई सामने खड़ी आँखों से। तब तक फिर एक तरंग आई कान तक-बेटे हमने तेरे गुरु महाराज से आज्ञा ले ली है तुमसे बात करने। और हाँ, उनने हमें तो हमें, तुम्हें भी आदेश दे दिया है बोलने-बतियाने का। सुनकर जैसे विद्या के ऊपर से कोई भार कम हुआ हो सहज हो उठे, फिर बोले- कब पधारे आप लोग इस महान् तीर्थ पर? (मल्लप्पाजी दिवा-स्वप्न की स्थिति में थे)

एक लम्बे समय के बाद सुनने मिले थे बोल विद्या के, सो छलक आये चार नेत्र दम्पत्ति के। गला रूंध गया। भरे गले से बोले मल्लप्पाजी-सदलगा कब चलोगे पुत्रवर।

चुप रहे आये विद्या। जैसे मल्लप्पाजी का प्रश्न सुना ही न हो। शांत। दृष्टि फिर आ गई नासा पर। उन्हें यह भी लगा कि अब दूसरा वाक्य माँ के कंठ से झरने की तरह फूट पड़ने की स्थिति में है। माँ भी कुछ कहेंगी पिता की तरह। संबंधों के तार झंकृत हो पड़ेंगे। अतः विषय को समाप्त करने के उद्देश्य से प्रश्नोत्तर न करके, दिया मात्र एक संदेश। कहने लगे-आचार्यश्री कुछ प्रदान करेंगे आज यहाँ, आप भी उसे पाइये। विद्या का मन्तव्य था आचार्यश्री के प्रवचन से।

मल्लप्पाजी को लगा-विद्या ने उन्हें घुमा दिया। वे घर-संसार की ओर इंगित करना चाहते थे, विद्या ने पहले ही मुनियों की ओर हो पड़ने का इशारा कर दिया।

आगे कोई बात न हो सकी।

विद्या देखने मिल गया यही तुष्टि काफी थी-उस धर्मज्ञ दम्पत्ति के लिए। विद्या पुनः शास्त्र में खो गये। (दम्पत्ति का स्वप्न समाप्त हो गया)

नटखट की यादें :

अपने घर में माँ मूर्तिवत् खड़ी रह गईं। पिता काष्ठवत्। जमे रह गए स्मृति पटलों पर स्मृतियों के अंकुर। एक उच्छ्वास के बाद माँ भीतर ही भीतर

बुदबुदाई–वह किसी की बात मानता ही कब था? अचानक वे दो साल पीछे लौट गईं, उन्हें दिखने लगी वह बावड़ी, जो सदलगा में उनके घर के पास ही स्थित है। एक बालक उसके ठंडे पानी में तैर रहा है। पड़ोस की माताएं शोर कर रही हैं– वह देखो विद्या ने सब पानी मचा दिया। डर तक नहीं लगता इसको।

शोर छनते–छनते पहुँचता है श्रीजी के पास। कोई कहता है–तुम्हारा विद्या आज फिर बावड़ी में तैर रहा है। माँ को विश्वास नहीं होता इस वाक्य पर, जवाब दे बैठती है–अरे बाबा, वह ठंडे पानी में नहाता कब है? उसने आज सुबह भी गर्म पानी से नहाया था, मेरे सामने। देखो, कोई अन्य लड़का होगा!

–देख लिया है अम्मा जी। वह विद्या ही है। न माने तो आप भी देख लें।

–अच्छा देखती हूँ तू रुक तनिक। श्रीजी घर के उस हिस्से में चली जाती हैं जहाँ विद्या के कपड़े सुखाये जाते थे। वे देर तक अर्गला पर दृष्टि पटकती रहीं, उन्हें न तो वहाँ विद्या का बनियान दिखा, न अण्डरवियर/चड्डी/न तौलिया। लौट आई माँ बाहर। बोली शिकायत कर्ता से–आप ठीक कहती हैं, वह विद्या ही है, मैं अभी खबर लेती हूँ उसकी। शिकायत करने वाली स्त्री भौंचक कि अम्मा जी बावड़ी तो गई नहीं, घर के भीतर गईं बस। फिर कैसे देख लिया विद्या को बावड़ी में तैरते?

थोड़ी देर बाद विद्या चुपचाप घर के पिछले कक्ष में आकर बैठ गए थे माँ से बचकर।

देखा माँ ने तो दहाड़ती सी बोली–तू फिर गया था बावड़ी आज? तुझे सौ बार तो रोका है, तू मानता क्यों नहीं? देखता नहीं–बावड़ी में नहाने से आँखें लाल हो जाती हैं। सर्दी–बुखार अलग बना रहता है। क्यों करता है परेशान?

शान्त रहे विद्या बावड़ी के जल की तरह। न हिले, न डुले। जब माँ ने प्रश्न रूपी कंकड़ उछाला तब हिले थोड़े से, बोले–मैं पालथी मारकर

पानी में आसन लगाता था और ध्यान करता था।

माँ सोच रही थी कि यह वही विद्या है जो बावड़ी में भी आसन लगाकर ध्यान करता था और मुझे विश्वास नहीं होता था। आज मैं पूर्ण विश्वास कर रही हूँ यह तब से ही ध्यानरत होता रहा है, हम लोग न समझ पाये, यह पृथक् बात है।

❑ ❑ ❑

तभी दृष्टि पड़ी एक चादर पर जो अर्गला पर सुखाने के लिए फैलाई गई थी, उस पर कढ़ाई का कार्य था, धागा से लिखा गया था 'सुखी जीवन।'

चादर पर टाँका/काढ़ा-गया यह शब्द माँ को भीतर तक हैरान कर गया। विद्याधर घर छोड़ने के तीन माह पूर्व ही तो उसे खरीद कर लाया था। चादर माँ को देकर जैसे उसने सारे परिवार के लिए कोई गुप्त कामना की थी– सुखी जीवन की। सब को सुखी जीवन जीने का संदेश देने वाला युवक स्वयं जंगलों के वैकराल्य से संघर्ष करने चला गया!

ममता की मारी माँ चादर के पास तक चली जाती है, चुपके से वे अक्षर छूती हैं जिनके समुच्चय से बना था 'सुखी जीवन'। जैसे अबोध बेटे को स्पर्श किया हो किसी माँ ने, छोड़ी एक दीर्घ साँस फिर बुदबुदाई - तुझे मालूम था, सुखी जीवन कहाँ होता है– घर में या वन में।

टूट गई स्मृति की रेखा अचानक। माँ खड़ी रह गई बाल ब्रह्मचारी विद्या की स्मृति में किंकर्तव्यविमूढ़ सी, अपने घर में।

❑ ❑ ❑

स्मृतियों के जंगल में पिता भी फँसे हुए थे अब तक। उनने जो-जो स्मृत किया था, वह भी एक चित्र की तरह आया था उनके नेत्रों के समक्ष। यही कि पिता घर के हर सदस्य से पूछ रहे थे कि विद्या कहाँ गया है। सभी अनभिज्ञ हैं। एक पूरा दिन ढलकर विदा ले गया है, दूसरा दिन भी समाप्ति की ओर। तब तक दिखे विद्याधर सिंह-पौर पर। लौटे हैं हरे-थके से। भूखे-प्यासे से। पर चेहरे पर मुस्कान बिखेरे हुए। पूछ पड़ते हैं

मल्लप्पाजी...कहाँ गये थे?

–मुनि दर्शन को।

–कहाँ?

–अमुक ग्राम।

–चुप हो जाते हैं मल्लप्पाजी। सोचने लगते हैं कभी मुनि दर्शन के लिए दो दिन तो कभी पंचकल्याणक के लिए दस दिनों तक बिना जताये–बताये बाहर रहे आने वाले इस राजकुमार को क्या कहा जावे। बस कभी झुंझला पड़ते। कभी मुस्करा पड़ते।

क्षणभर में उनने निर्णय लिया–विद्या पंचकल्याणकों के बहाने महावीर के समवसरण की तलाश में रहा है। माँ ने विचार किया–विद्या बावड़ी में नहीं, संसार समुद्र में तैरने का प्रयास करता रहा है। उसे समुद्र पार का दृश्य ध्यान लगाकर देखना ही है, वह देखेगा। वह है ध्यानी। विद्या को ध्यानी कहने वाली माँ पुनः ध्यानमय हो गई और रम गई विद्या में। विद्या कह रहे हैं, माँ शिवकुमार के अन्नाजी ने नई कार ली है।

–तो?

–तो क्या माँ उनसे कार लेकर हम लोग शिखर जी चलेंगे।

ध्यान से बाहर लौट आई माँ। उन्हें लगा – यह विद्या कार का भूखा कभी नहीं रहा, रहा तो तीर्थों का। कल्पना की कार में भी उसके भाव तीर्थ वंदना के रहे हैं। सच, तब तो बावड़ी में पालथी लगाकर तैरने में भी उसका भाव नहाने का कम, ध्यान मय होने का अधिक रहा है। एक साँस छोड़ी माँ ने। फिर बुदबुदाई माँ, डरे हुए नेत्रों से विद्या की ओर देखकर – विद्या! तू पल–पल ध्यान में रहा, हमी थे जो ध्यान न दे पाये। तूने गत वर्ष पयुर्षण पर्व में दशों व्रत किये थे, सुबह–सुबह पूजा–पाठ करता था। तेरे कार्य किसी विशेष दिशा के लिए रहे, पर हम ध्यान न दे पाये थे।

सोचते ही सोचते समय बीत गया।

पुनः एक सोच गोमटेश का :

दूर बाहुबली जी की प्रतिमा के पास जयघोषों से आकाश बार–बार

भर जाता था, दर्शक टकटकी लगायें कभी प्रतिमा जी की ओर तो कभी मुनि संघों की ओर देखते। बाहुबली के दर्शन, पंचतत्त्वों का गंधोधक और तीर्थराज श्रवणबेलगोला का धर्ममय वातावरण, मल्लप्पाजी और श्रीजी को पराया-पराया सा लग रहा था। सोच के पीछे दम्पत्ति का भाव था बेटा को प्राप्त कर लेने का, मगर हो गया उलटा। जो पास था, वह दूर हो गया।

छलकते रहे नयन :

नियति मान संतोष कर लिया दम्पत्ति ने। सोचने लगे दोनों-कोमल विद्या को पा लेने के बजाय, कठोर निर्णय ही स्वीकार करें प्रकृति का। मोह भरा उनका मन यह सोच ही न पा रहा था कि मल्लप्पा और श्रीजी का विद्या सारे संसार का विद्या बन जायेगा कुछ ही वर्षों में।

❑ ❑ ❑

हृदय कक्ष के दृश्य :

श्रवणबेलगोला के पावन-शोर से दूर, मल्लप्पाजी और श्रीजी चिन्तातुर थे सदलगा में। कहने को वे सदलगा में थे पर हृदय-मन कहीं और था उनका। यों घर में योग्य संतान की कमी नहीं थी। बाईस वर्षीय महावीर बाबू को देखकर तन-मन जुड़ा जाता था माता-पिता का, तेरह वर्षीय अनन्तनाथ की मीठी-मीठी बातों से कान भरे रहते, ग्यारह वर्षीय शांतिनाथ की सिधाई और गंभीरता भी अच्छी लगती रहती। सत्रह वर्षीय बेटी शांता घर के कामकाज में माँ का हाथ बँटाती तो पन्द्रह वर्ष की सुवर्णा दिन भर प्रश्न पूछती रहती माँ से, कभी पिता से। घर का हर सदस्य एक दूसरे के पास ही नहीं, एक दूसरे के भीतर रमा हुआ था, पर विद्या का गमन सभी को एक अनदेखे एकांत में फेंक गया था। सब साथ थे, पर अकेले लगते थे। याद करते रहते विद्या भैया को। सब अपने स्थान पर बैठे-बैठे चल-चित्र देखते रहते विद्या के। आँखों के रास्ते उसकी मनहर-छवि कब किसके मन में प्रवेश कर जाती, कितनी देर तक समाई रहती, किसी को पता ही न रहता। क्रम तब टूटता जब एक सदस्य दूसरे को पुकारता। गोया कि सारा घर किसी काल्पनिक छविगृह में बैठकर विद्या की छवि देखा

करता था। अपनी-अपनी पसंद की फिल्म, अपनी-अपनी पसंदीदा टाकीज। फिर भी सभी को फिल्म का नायक होता उनका चहेता-विद्या। विद्या होता नायक और विद्या ही फिल्म।

अभी-अभी माँ के हृदय में जो टाकीज बनी थी, उसमें फीचर फिल्म देखने में तल्लीन थी वे। एक, सोलह वर्षीय विद्या की पिक्चर वे देखती हैं कि विद्या बाजार से लौटा है। जो कुछ लाने गया था उससे हटकर लाया है, एक सुन्दर डब्बी। कहता है-माँ देखो, यह कितनी अच्छी डब्बी है। जब कभी तीर्थयात्रा पर चलेंगे तो यह घी रखने के लिए अच्छी रहेगी। इसे रख लो माँ।

फिल्म आगे बढ़ रही है—एक दिन विद्या मेला से लौटा तो जैन संत की तस्वीर खरीद कर लाता है और दिखाने लगता है, 'पूज्य आचार्य शांतिसागर जी।'

पंचकल्याणक से एक शास्त्र खरीदकर लौटा है। फिर कहीं से वापस हुआ है, एक मूर्ति खरीद कर लाया है- लो माँ, मैं आपके लिए भगवान् लाया हूँ (और खुद भगवान् बनने चल पड़ा, माँ अधर हिलाती है)।

समाप्त हो गई माँ की फिल्म। बुदबुदाती है। इसे तीर्थंकर, शास्त्र, तीर्थयात्रायें शुरू से ही पसंद रहे हैं। अपनी हर बात को इस तरह से शुरू करता कि उसका समापन मंदिर या तीर्थ की चर्चा से ही होता था। नई से नई वस्तु का उपयोग तीर्थ या मंदिर से अतिरिक्त कहीं न था उसकी दृष्टि में।

❑ ❑ ❑

एक फिल्म मल्लप्पाजी के मन में शुरू थी। वे देख रहे थे कि उनका बेटा चित्रकार बन गया है। १५ से १८ वर्ष की उम्र का वह सफर, विद्या का, झूल गया पिता की आँखों में। वह किसी दिन लोकमान्य तिलक का चित्र बनाता है, तो किसी दिन सुभाषचन्द्र बोस की तस्वीर खींचकर दिखाता है। कभी वल्लभ भाई पटेल की छवि अंकित करता है सफेद कागज के टुकड़े पर, तो कभी सरस्वती की। एक दिन ड्राइंग पेपर पर

भगवान् बाहुबली का जीवंत चित्र रच डालता है और दिखाता है श्रीजी को। कुछ ही समय बाद उसने अपने हृदय पर बने हुए महावीर का रेखांकन कर डाला केनवास पर। इतना प्रसन्न कि जैसे अभी-अभी महावीर ने अपनी वास्तविक झलक दिखा दी हो नन्हे भक्तराज को।

फिल्म समाप्त। मल्लप्पाजी यथार्थ में आ गये थे। देर तक माथा पकड़े रहे। फिर माथा पकड़े-पकड़े ही सोचने लगे- महापुरुषों के चित्र उतारने वाला यह युवक उनके चारित्रों को उतारने बढ़ गया है सुदिशा में। प्रभु उसका कल्याण करें। तभी आँख के आकाश से किसी अदृश्य बादल ने पानी की एक बूँद बरसा दी मल्लप्पाजी की कोमल-कपोल-पृथ्वी पर।

देख रही थी एक फिल्म शांता-एकान्त कक्ष में भैया विद्या बैठे हैं। उन्होंने दाहिने हाथ के अंगूठे के नाखून को आवश्यकता से अधिक लंबा बढ़ा रखा है। हाथ में एक छोटा-सा सफेद कागज है। कागज पर वे नाखून गड़ा-गड़ाकर कोई चित्र बना रहे हैं। शान्ता साहस कर उनके पीछे पहुँच जाती है। चित्र देखकर मुग्ध। उसे जोर से हंसने की इच्छा होती है, पर संकोच के कारण हंसती नहीं। उसने जो चित्र देखा है अभी-अभी, वह चित्र, उसके सिवाय अभी घर के किसी अन्य सदस्य को देखने का सौभाग्य नहीं मिला। वह तुरन्त पक्षी की तरह उड़कर सभी के पास पहुँचना चाहती है। सबसे पहले बड़े भैया को, फिर पिता जी को, फिर माता जी को और सभी भाई बहिनों को बता देना चाहती है। मगर प्रश्न था उसके सामने कि बतलाये कैसे? शब्दों से तो बता नहीं सकती। अतः वह ताक में रहती है। शाम को ज्यों ही विद्याधर चित्र रखकर मंदिर जाते हैं, शांता उठा लाती है वह मनोहर चित्र। फिर दिखाती है सबको। सभी देखकर चकित। नाखून की सहायता से उकेरा गया महात्मा गाँधी का चित्र ऐसा लग रहा था कि वे अभी कुछ बोलेंगे। सभी सराहना कर रहे थे अपने प्रिय चित्रकार की।

माता के लिए साड़ी :

शांता को वह क्षण याद आ जाता है अचानक, जब युवक विद्याधर सांगली के बाजार जा रहे थे और माँ कह पड़ी थीं-'वहाँ तक जा रहा है तो

मेरे लिए एक सस्ती सी साड़ी लेते आना'।

'सस्ती' शब्द पर बिदके थे विद्याधर। फिर बोले–सस्ती वस्ती मैं नहीं जानता, जो अच्छी लगेगी, मैं तो वहीं लाऊँगा। मुस्करा दी माँ–अरे ज्यादा दाम न दे आना, दुकानदार ठग लेते हैं।

कैसे ठगेगे? लौटे जब विद्याधर तो एक सफेद साड़ी जिस पर छोटी–छोटी बुन्दकी प्रिन्ट थीं, लाए। दिखाई माँ को।

माता जी को यह डिजाइन खूब पसंद आई। कहने लगी–साड़ी खरीदने में तो बड़ा निपुण दिखता है रे। कितने में लाया है यह फूलदार डिजाइन।

विद्या चुप, जैसे कह रहे हो कि 'मैं जाऊँगा तो अच्छी चीज लाऊँगा ही।'

साड़ी की डिजाइन और साड़ी वाले हाथों की श्रद्धा देख माँ आनन्द विभोर हो उठी थीं।

शान्ता की फिल्म पूरी हो गई। उसे एक खालीपन लगा घर में। चित्र और चित्रकार कुछ भी पास में नजर न आये। आँखें फाड़े बैठी रह गई स्वतः चित्रवत्।

सड़क चलते जाप :

एक मायने में उस घर का हर सदस्य कल्पनाचारी हो रहा था विद्या की अनुपस्थिति से। विद्या के प्रार्थक्य से। महावीर बाबू की आँखों में भी उस क्षण एक फिल्म चल रही थी। वे देखते और संबोधते जाते थे अपने 'स्व' को। सबसे पहले उन्होंने देखा कि उनका भाई अठारह वर्ष का हो गया है। फिर भी कहीं घूमने निकलता है तो हाथों को जादा घुमाता/फिराता/मटकाता नहीं है, युवकोचित हास्य–मजाक या ऊधमबाजी भी नहीं करता। चलते हुए भी हाथ पीछे बाँधे रहता है। लोग–बाग इतना ही समझते हैं कि पीछे हाथ बाँधकर टहलने निकलता है, शांतचित्त, पर ...पर विद्या हाथों को भर नहीं बाँधे रहता, उसका अंगूठा और अंगुली मिलकर थिरकते रहते हैं, जैसे वह कोई जोड़ घटाना कर रहा हो। कर रहा हो

वणिकवृत्ति पर लदा हुआ हिसाब। वे दृढ़ स्वर से बुदबुदाते हैं, वह हिसाब किस बात का करता? वह तो चलते-चलते भी णमोकार मंत्र का चक्र अंगुलियों पर प्रारम्भ रखता था।

उन्हें याद हो आता है। कोई पूछता-घर से मंदिर कितनी दूर है तो सामान्य व्यक्ति यही कहता-यों ही कोई आधा फर्लांग। विशेष व्यक्ति कहता बस करीब तीन मिनट का रास्ता है। पर विद्या इस प्रश्न का उत्तर कुछ भिन्न ही देता। वह कह देता करीब २८ बार णमोकार मंत्र कहे, उतना समय लगता है मंदिर पहुँचने में। ऐसा हिसाब रहा है विद्या का।

महावीर जी की फिल्म विभिन्न आयामी है। आगामी दृश्य में वे देखते हैं सोलह की वय से ही वह शास्त्राध्ययन करने लगा है। फिर देखते कि करीब सालेक से वह अध्ययन करते हुए नोटबुक में कुछ लिखने भी लगा है। नोट्स तैयार करता है।

वे देखते हैं कि वह भाई बहिनों के साथ कैरम-बोर्ड खेलने में लगा है। कभी ताश खेलकर मनोरंजन कर रहा है। खेलते हुए एक दूसरे को छेड़ते हैं और जोर से हंसते हैं। ही-ही, ठी ठी इतनी बढ़ जाती है कि किसी-किसी क्षण माँ को बीच में आकर टोकना पड़ जाता है।

शास्त्र वाचन नियम से होता है घर में। एक दिन विद्याधर ने समझाया, पारिवारिक सदस्यों को-शरीर से आत्मा पृथक् है। शरीर का स्वभाव अलग है, आत्मा का अलग। जैसे धान और उसके भीतर पड़ा दाना पृथक्-पृथक् है।

विद्याधर तो समझा कर सो जाता है। दूसरे दिन मजेदार वृतान्त छिड़ गया बालक शांतिनाथ कच्ची मूँगफली चबा रहा था। दाना लेता, उस पर से लाल छिलका नाखून से खरोंच कर हटाता और सफेद दाना प्राप्त कर लेता।

अचानक वहाँ से विद्याधर निकलता है, उसकी उड़ती हुई दृष्टि पड़ी शांतिनाथ के हाथों पर, जो मूंगफली का पतला छिलका नाखून से हटा रहा था। विद्याधर को दाना दिखा नहीं, सो पूँछ बैठा- क्या कर रहे हो यह?

बारी थी उत्तर देने की; सो शांतिनाथ बोला, रात का प्रसंग उनके चित्त में सजीव था, कहने लगा–दाने से लालिमा–युक्त विकार हटा कर आत्मा–राम को खोज रहा हूँ। मनोरंजक किन्तु बौद्धिक उत्तर के समक्ष विद्याधर के पास हास्य के अतिरिक्त कुछ न था। वह मुस्काता सा आगे बढ़ गया, निहाल हो गया घर के वातावरण पर। वह तार्किक है और दूसरों के तर्क की भी इज्जत करता है। इसी उम्र में वह एक कार्य और करता है, साइकल उठाकर शहर चल देता है और मनपसंद सिनेमा देखकर लौटता है। सिनेमा से प्राप्त आनन्द और शिक्षाओं पर चर्चा करता रहता है।

सिक्के के दो पहलू स्पष्ट दिखने लगते हैं–फिल्मों की रुचि तो मंदिर की लगन भी है।

बाजार जाने का मौका आता है तो किसी का आदेश टालता नहीं, आदेश सुनकर न हर्ष दिखाता, न विषाद, बस सामान्य–वृत्ति से चल देता है। लौटकर चुप रहता है, मगर अपने द्वारा लाई गई वस्तुओं की चर्चा अवश्य प्रसन्नता से करता है।

शाम हो रही है, कोई मित्र आ गया है, विद्या उसके साथ टहलने निकल पड़ा है। घर से सीधे उस पुल की ओर जो दूधगंगा के दोनों किनारों को जोड़ता है। नदी का सामीप्य प्राप्त कर लौट आता है।

रात शुरू होती है तो विद्या के चेहरे पर एक नई प्रसन्नता शुरू हो जाती है। मंदिर जाने की प्रसन्नता। मन मैं लड्डू फूटने लगते हैं। उन का चेहरा देखकर गृह सदस्य समझ जाते 'विद्याधर मंदिर जी जा रहे हैं।

❑ ❑ ❑

मंदिर जाने के नाम पर वह अत्यन्त निर्भीक है। तभी तो समीपवर्ती मंदिरों के साथ–साथ वह उस मंदिर को भी जाता है जो घर से एक किलोमीटर हैं। जहां आने जाने में बच्चों को रास्ता में डर हो आता है। फिल्म देखकर लौटने के बाद वह सोता नहीं है, हाथ मुँह धो, कुल्ला कर मंदिर जाता है। भक्ति और निर्भीकता की धारायें उसमें सतत बहती रहती हैं।

एक बार घर पर सुबह–सुबह फूलों की आवश्यकता थी, सो विद्या

को शाम को ही फूल तोड़कर रख लेने का आदेश मिला। उसे लगा- शाम को तोड़े गये फूल सुबह तक कुम्हला जावेंगे। फलतः वह शाम को नहीं गया, बड़े भोर के चक्कर में रात ३ बजे ही उठ गया और फूल तोड़ने उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ शाम को ही किसी मृतक का अग्नि-संस्कार किया गया था। चिता जल रही थी, विद्याधर समीप ही पौधों से फूल तोड़ रहे थे। ओठों से णमोकार मंत्र निःसृत हो रहा था।

मंदिर, प्रवचन, विधान, पंचकल्याणक के नाम पर मयूर नृत्य करने लगता है, तन-मन विहँस जाता है उसका।

अंतर्मन की साज-सज्जा :

वह एकान्त (सुनसान) प्रेमी है। उसे एकान्त में रमने/जमने में आनंद आता है। नगर में तीन मंदिर है पर वह उस मंदिर में अधिक जाता जिसके भीतर अलग-अलग कोनों में कई एकान्त स्थल हैं। वहाँ, किसी एक तरफ, घंटों एकान्त में बैठकर चिंतन करता रहता है। उसके चिंतन की प्रक्रिया स्वस्थ है, तभी तो चौदह-पंद्रह की उम्र में ही दोनों बहिनों को धर्म-पाठ पढ़ाने लगा और सहस्रनाम, भक्तामर, तत्त्वार्थसूत्र सिखा दिये। उसे एकान्त के प्रति विशेष लगाव है तो प्रकृति के प्रति भी एक विशिष्ट चाहत है। वह कभी-कभी प्रकृति दर्शन और एकान्त की खोज में घर से दूर पहाड़ों तक चला जाता है। जिन पहाड़ों पर अक्सर पहुँचता है उनके नाम कुम्भोज, बाहुबली और स्तवनिधि पर्वत है। उसकी इस प्रवृत्ति से मित्र-पड़ोसी या किसी अन्य व्यक्ति से कभी कोई झगड़ा तो क्या विवाद तक नहीं हुआ है पूरे बाल्यकाल और किशोरावस्था में।

इस एकान्त-प्रेमी ने घर में भी सबसे पीछे के कमरे को पसंद किया है। शोरगुल वहाँ तक पहुँच नहीं पाता। शांति से स्वाध्याय करने मिल जाता है। उसके साधन में कोई बाधा न आ पाती।

वे पवित्र हाथ :

तभी अनन्त की दृष्टि पड़ी कक्ष की दीवाल पर लगाए गए उन चित्रों पर जिन्हें विद्याधर स्वेच्छा से खरीदकर लाए थे और फ्रेम करा कर अपने

हाथों जिन्हें दीवाल पर टांगा था।

इन्हीं चित्रों से उनकी रुचि समझी जा सकती थी, पर कोई न समझा, सब यही समझते रहे–''वह कक्ष सजा रहा है, वह दीवाल सजा रहा है'' बस।

काश कोई जान पाता कि वे दीवाल या कक्ष से परे अपने अंतर्कक्ष की सजावट में लीन हो रहे हैं।

वे चित्र साधारण नहीं थे। उनमें एक था–तत्कालीन आचार्य प्रवर शांतिसागर मुनिमहाराज का, दूसरा था भगवान् महावीर की पतित पावन निर्वाण–भूमि पावापुरी का और इसी तरह कुछ अन्य।

अब वे चित्र केवल याद दिला रहे हैं पवित्र हाथों की। वे बन गए हैं एक यादगार किसी महामानव के गृहत्याग की प्रवृत्ति की।

कुछ दिनों से एक नई आदत बन गई है। पहले पैसे जोड़कर पिक्च र देख आता था। अब जेब खर्च जोड़कर धार्मिक आयोजनों में पहुँचने का प्रयास करता है। पंचकल्याणकों या मेलों में पाँच–छह दिन तक अपनी जेब खर्च की राशि के बल पर टिका रहता है।

आज वह सात दिन बाद मेला से लौटा है। पिताजी डांटते हैं–बिना पूछे क्यों गये थे? वह चुप रहा आता है। प्रश्न दोबारा होता है। वह णमोकार–मंत्र कहने लगता है। सब कुछ शांत हो जाता है।

घर छोड़ते–छोड़ते वह कृषि कार्य पूरा करा गया था। क्यों? खासतौर से बोनी के समय उसने जी तोड़कर कार्य किया था। क्यों? जब जाना ही था तो क्या मेहनत, क्या बोनी? उसके द्वारा बोया गया बीज का हर दाना अधिक फसल लेकर लौटा था। क्यों? उस वर्ष अन्य वर्षों की तुलना में अधिक फसल हुई थी, क्यों? क्या होनहार तपसी के हाथ में कोई जादू था, या था वह उसका पुन्याश्रित कृत्य? पवित्र हाथों द्वारा किये गये कार्य का परिणाम था या था अहिंसक विद्या पर प्रकृति का प्यार भरा उपहार? क्या था। आखिर वह?

विद्या अपने हाथों से शायद धर्म बीज डाल गया था खेतों में–

अहिंसा, अपरिग्रह और अचौर्य की फसल उगाने।

शुद्धि ग्राही :

महावीर प्रसाद की फिल्म वैविध्य लिये हुए हैं। वह अभी भी जारी है वे भाँति-भाँति के दृश्य देख रहे हैं। हर दृश्य में विद्या है। वे आगे देखते हैं। विद्या को गाँव या शहर का वातावरण नहीं, अपनत्व-पूर्ण वातावरण पसंद है। कस्बा के रंग ढंग पसंद हैं। प्रेस किये हुए कपड़े पहनता है। उसके कपड़े कोई बे-वजह नहीं छू सकता है। बिस्तर को कोई हाथ नहीं लगा सकता। 'शुद्ध रहने' और 'शुद्ध रखने' की एक कामना पलपल उसके भीतर रची-पची मिलती है।

मग का सूत्रधार :

पिक्चर देखता है तो नाटकों की ओर खिंचाव होगा ही। ''हाँ नाटक भी बहुत पसन्द करता है।'' देखते देखते वह उनका पात्र भी बनने लगता है। एक नाटक में सूत्रधार का कार्य किया तो पुरस्कार जीत कर ले आया।

'सूत्रधार' शब्द के उच्चारण पर महावीर बाबू की आँखें चमक पड़ती हैं। वे जान गये कि सामान्य नाटक में सूत्रधार बनने वाला यह पात्र, अघ संसारी-नाटक का सूत्रधार बनने चल पड़ा है देशभूषणजी के पास।

अनुज अनन्तनाथ ने भी उस रोज अपनी आँखों से एक फिल्म देखी। वे देखते है 'भैया' विद्याधर साइकल से निपानि जा रहे हैं, यह सदलगा से सत्ताईस किलोमीटर हैं। दूरी सुनकर मैं रुक गया हूँ। वे निपानि चले गये हैं। वहाँ संत विनोबा आये हैं। पंद्रह वर्ष की उम्र से महापुरुषों के दर्शनों की तीव्र लालसा। उस लालसा का अर्थ अब समझ में आ रहा है। ऐसे ही तो एक बार तत्कालीन प्रधानमंत्री पं॰ जवाहरलाल नेहरू का आगमन हुआ था सांगली में, विद्या भैया सबसे पहले भागे थे उन्हें देखने। सही मायने में 'समझने'।

अनन्तनाथ आगे देखते हैं कि जब वे बारह वर्ष के थे, उन्हें भोजन करना और खेलना-कूदना ही अच्छा लगता था। शेष किसी कार्य में जी नहीं लगता था। माता-पिता व बड़े भाईसाब रोज-रोज धार्मिक किताबें

पढ़ने की सीख देते रहते, वे इस कान से सुनकर उस कान से निकाल देते। एक दिन वे विद्याधर के सामने पड़ गये, विद्या कहते हैं ''तुझे णमोकार मंत्र भी तो आता नहीं। चल, पहले उसे याद कर''। बोले विद्याधर–णमो अरिहंताणं। फिर अनन्त को दोहराने को कहा। देखते ही देखते णमोकार मंत्र याद हो गया। बाद में शांतिनाथ को भी याद करने कहा। शान्ता व सुवर्णा को करा ही चुके थे। कुछ दिनों में ही भूतकाल, भविष्य और वर्तमान चौबीसी के नाम रटाये। 'वे पीछे पड़ गये तो हम आगे बढ़ गये, सीख गये पोथी–पत्रा पढ़ना, याद करना और उन पर चर्चा करना। प्रभावना ने जोर पकड़ा तो धीरे–धीरे हम सब शाम को जाप देने लगे। संध्या सामायिक करने लगे'। अनन्त नाथ को लगा कि क्षणभर को वे पुनः पुराने स्थान पर बैठे णमोकार मंत्र कह रहे हैं, विद्याधर उनसे कहला रहे हैं।

जाने क्या हो गया था उस रोज लोगों को। शांतिनाथ भी अपनी फिल्म में विद्या के अतीत को निहार रहे थे। वही हाल था सुवर्णा का। जितनी आँखें, उतने दृश्य। अंतिम दृश्य सबका एक जैसा था–एक ऐसी छबि जो तीन माह की उम्र में 'पीलू' कहलाती थी, तीन वर्ष की उम्र में 'मकराने की मूर्ति' कहलाने लगी, चार वर्ष में 'मरी' कही जाने लगी और पाँच वर्ष में 'गिनी' हो गई। वह छबि अब विद्याधर के नाम से देशभूषण महाराज के सामीप्य में हैं, श्रवणबेलगोला में, जिसे लग रहा वर्षों से नहीं देखा। (मरी = अबोध बालक, शिशु (कर्नाटक की बोली में)। गिनी = तोता।)

❑ ❑ ❑

सेवा और तपस्या :

देशभूषण महाराज अस्वस्थ रहने पर कभी–कभी डोली से चलते थे। उनकी डोली को कांधा देने कुछ स्वस्थ युवक तैनात किये गये थे, परन्तु आम–श्रावकों की भी इच्छा रहती कि कुछ दूरी तक ही सही, उनके कंधों पर भी डोली का भार आये। यही सोचते थे उनके शिष्य।

मगर विद्याधर नाम के शिष्य ने सोचने से आगे 'कर्तव्य' को

अधिक जिया। अतः जब भी विचार आता, वे डोली का एक सिरा अपने बलिष्ठ स्कंध पर धारण कर मीलों का फासला तय करते। लोग हँसकर कहते यह सेवा नहीं है, तपस्या का एक अंग है, सभी को करना चाहिए।

एक शाम, श्रवणबेलगोला के समीप की ही बात है, विद्याधर डोली धरकर बैठ ही रहे थे कि उन्हें बिच्छू ने डंक मार दिया। देखते ही देखते वे पीड़ा से छटपटाने लगे। तभी उन्हें याद आया कि कालान्तर में मुनि होना है, दर्द सहने का पाठ अभी से सीख लेना चाहिए। उन्होंने संघस्थ सदस्यों द्वारा किया जाने वाला उपचार स्वीकार नहीं किया और वही मैदान में एक चटाई लेकर लेट गये। ''दर्द को सहना और किसी से न कहना'' का प्रथम पाठ विद्याधर ने यहाँ पर सीखा था। वे रात भर मौन रहकर चटाई पर डले रहे। दर्द की तीव्रता इतनी बढ़ गई कि आँखों से निरंतर अश्रु ढ़रकते रहे। देशभूषण महाराज को उनकी चिन्ता हो आई, पर वे भी क्या करते, विद्या नाम के युवक ने कष्टों के लिये और उन्हें जीतने के लिए ही, जन्म लिया था।

उनके इस प्रयास की प्रशंसा संघस्थ-सदस्यों ने हृदय से की। सही बात तो यह है कि सभी ने शिक्षा भी ली। सब विद्याधर की तरह सहनशील और आत्मस्थ बन जाना चाहते थे। विद्याधर जो उनके समक्ष काफी छोटे, मात्र २० वर्ष के युवक थे, प्रेरणा के महान् स्रोत बन गये थे।

मुनिपथ पर बढ़ने और साफल्य पाने के संकेत उनके जीवन में यहां स्पष्ट हो चुके थे।

रात से सुबह हो गई। विद्याधर सभी के साथ सभी की तरह प्रसन्न थे।

❑ ❑ ❑

चातुर्मास स्थापना का समय सामने आ गया है। देशभूषण महाराज ससंघ किसी स्थान की ओर चल देने का विचार ले आये हैं मन में। वे संघ को आदेश प्रदान करते हैं। संघ ऊंची-नीची जमीन पाकर श्रवणबेलगोला से कुछ ही दूर पहुँचकर ठहर जाता है एक स्थान पर। इसे 'स्तवनिधि क्षेत्र'

कहते हैं।

स्तवनिधि के वातास में भी उतना ही चैन घुला था, जितना श्रवणबेलगोला में था। संघ रम गया। देशभूषण महाराज के साथ-साथ उनके संघ के सभी सदस्य तप, आराधना और व्रतों में तल्लीन हो गये। युवा योगी विद्याधर का यह क्षेत्र पूर्व से ही जाना माना है। वहाँ का चप्पा-चप्पा उनसे परिचित है अत: वे पर्वत पर तो कभी मंदिर में ध्यानमग्न हो जाते हैं। सारा क्षेत्र उनके भीतर झूमता रहता है, वे सारे क्षेत्र पर झूमते हुए चर्या सम्पन्न कर रहे हैं। व्यवस्था का राजमार्ग नहीं :

स्तवनिधि की उत्तुंग चोटियाँ, हरित भूमियाँ और विभिन्न प्राकृतिक घटाये बीस वर्षीय विचारशील युवक को अपने आगोश में समेटे प्रसन्न थी। युवक भी आचार्यश्री देशभूषण महाराज की पद रज से पुष्प-सा खिल उठा था।

विद्याधर अपनी चर्या को संकल्पों के सूत्रों से बांध देना चाहते थे। वे सोचते, उन्हें ब्रह्मचर्य-व्रत प्रदान कर दें आचार्यश्री, तो लक्ष्यपूर्ति की ओर यात्रा हो पड़े, परन्तु आचार्य देशभूषण कुछ और ही सोच रहे थे- विनम्र, हृष्ट-पुष्ट आज्ञाकारी किन्तु निर्भय, अन्वेषी किन्तु स्वकेन्द्रित युवक विद्याधर मुनिपथ से पृथक् भट्टारक पथ का अनुगामी बने। गादी-विशेष का नियंत्रण यह खूब-खूब कर सकता है।

परखने की दृष्टि से वे संघ की देख-रेख, एक मायने में बागडोर, इसी युवक को सौंप चुके थे।

मगर अध्यात्म-सागर में डुबकी लगाने का इच्छुक युवक, व्यवस्था के अपवादमार्ग पर चलने राजी कैसे होता! उसे तो मुनि बनना था। उसे मुनि-पथ चाहिए था।

❑ ❑ ❑

सदलगा और समीपी परिवेश के लोग चाहे जब आ धमकते विद्याधर के पास। लोगों को तो अच्छा लगता अपने विद्या का नैकट्य प्राप्त कर, परन्तु विद्या अचकचा जाते। संकोच होता कि ये मोह के मारे लोग मेरे

दैनिक कार्यक्रम में किंचित् विघ्न अवश्य डाल जाते हैं। गुरु सेवा के क्षण, आगम चिन्तन के पल, या तपाराधन के पहर–स्पर्श कर जाते है अपने मोह से ये मोही। यह तो ठीक नहीं। विद्याधर के हृदय में विचार जागा कि काश गुरुवर देशभूषण महाराज यहाँ से प्रस्थान कर देते तो अच्छा रहता। ऐसा ही कहाँ भी था उन्होंने आचार्यश्री को।

जब उन्हें संकेत मिल गये कि आचार्यश्री अभी कुछ अधिक समय देना चाहते हैं दक्षिण भारत को, तो सोच में पड़ गये। वे फिलहाल दक्षिण भारत से, दूर चल देना चाहते थे। अतः ऊहापोह में पड़ गये। क्या करें? दक्षिण छोड़ते हैं तो आचार्यश्री भी छूटते हैं। रो पड़ा विद्याधर का हृदय। कैसे छोड़ूँगा आचार्यश्री के चरण! जिनके संकल्प दृढ़ होते हैं वे कुछ भी छोड़ने में घबराते नहीं हैं और विद्याधर तो थे त्याग की जीती जागती मूर्ति, निर्मोह की शिला।

समय विशेष के लिए दक्षिण छोड़ देना उनकी दृष्टि में उचित था। था–उनका निश्चय। अतः एक दिन गुरुवर से आज्ञा ली और अपना संपूर्ण वैभव छोड़कर उत्तर भारत को चल देने उद्यत हो पड़े, उनका संपूर्ण वैभव था क्या? 'गुरु चरणों की रज' ही उनका वैभव था, वे उसे भी त्याग कर सच्चे निर्मोही बन गये और चल दिये उत्तर की ओर। स्वीकार किया तो केवल गुरुवर का मौन आशीष।

❑ ❑ ❑

प्रथम श्रेणी का यात्री :

यायावर की तरह युवक दक्षिण से उत्तर की ओर देश की लंबाई लाँघता–फलाँगता पहुँच गया बाम्बे–सेन्ट्रल। जहाँ से ट्रेन बदलकर अजमेर जाना है। अजमेर वाली गाड़ी अभी आई नहीं है। प्रतीक्षा करनी होगी। सामने एक कक्ष के समक्ष बोर्ड पर लिखा है "प्रथम श्रेणी यात्रियों के लिए प्रतीक्षालय।" विद्याधर उठकर सीधे उसमें जा बैठे, वही मराठी का अखबार रखा था टेबल पर, उठाकर पढ़ने लगे। तब तक प्रतीक्षालय का कर्मचारी आ गया। भूखे–प्यासे विद्या के चेहरे पर उस क्षण दैन्य झलक रहा था।

कर्मचारी पूछ बैठा, टिकट? विद्याधर ने पाकेट से टिकट निकाल कर बतला दी।

–यह तो थर्ड–क्लास की है।

–तो?

–तो क्या, तुम फर्स्ट–क्लास के प्रतीक्षालय में क्यों बैठे हो?

–फिर कहाँ बैठता? वहाँ तृतीय–श्रेणी–यात्रियों के प्रतीक्षालय में। यह कहकर कर्मचारी ने आँखें कुछ अधिक गड़ा दी विद्या के सुकुमार निर्दोष चेहरे पर। विद्या उठकर चले गये तृतीय श्रेणी की ओर। वे तो चले गये सहज, परन्तु क्षण भर को प्रकृति सहम गई। कर्मचारी की आँखें काश प्रथम–श्रेणी के वास्तविक यात्री को पहचान सकतीं। खास टिकट खरीदकर प्रथम–श्रेणी वाले यात्री तो वह देखता रहा है, पर इस यात्री को, जो प्रथम श्रेणियों के यात्रियों के मध्य में भी सर्वप्रथम, सर्वमान्य हैं, उसे उस कर्मचारी की आदिव्य–आँखें न पहचान सकीं और उसके देखते ही देखते प्रथम श्रेणी का यात्री तृतीय श्रेणी के कक्ष में चला गया। धन्य हो गया वह कक्ष, जिसे अनजाने ही उस दिन विद्याधर, होनहार–मुनि, के चरण स्पर्श करने का गौरव मिला। 'प्रथम' को ठुकरा कर 'तृतीय' का गौरव बढ़ाने वाले विद्याधर इस कक्ष के लिए नये नहीं थे, कभी महात्मा गाँधी भी इसी परम्परा में उस कक्ष को अपना स्पर्श दे गये थे। ऐतिहासिक हो गया था वह कक्ष। वह प्लेटफार्म। वह स्टेशन।

कहाँ मिलेगे गुरुनाथ!

कुछ ही समय बाद गाड़ी आ गई। विद्याधर रवाना हो गए। यात्रा प्रारम्भ। खिड़कियों से संसार के दृश्य देखते हुए वे जा पहुँचे राजस्थान के उस ऐतिहासिक नगर में, जिसे अजमेर कहते हैं। वह कोई जुलाई ६७ का समय था। वहाँ भी जनजन से पूजित दो चरण थे, पू० ज्ञानसागरजी मदनगंज किशनगढ़ में जो अवस्थित थे, वहाँ भी रज थी। जरूरत थी एक लग्नशील अध्यवसायी शिष्य की। विद्याधर को उनके चरणों की भनक पड़ गई थी हृदयमन में। दो उपवास झेलने के बाद मिला था अजमेर। वे सातवीं

प्रतिमाधारी थे। रेल-यात्रा में देव-दर्शन एवं शुद्ध आहार की व्यवस्था न होने के कारण उन्हें दो दिन तक निर्जला-उपवास करने पड़े थे। जैन मंदिर में पहुँचे। एक व्यक्ति से पूछा–पू० ज्ञानसागर महाराज कहाँ मिलेंगे। व्यक्ति, व्यक्ति था। अतः उसने मुनि का पता न बताकर एक अन्य व्यक्ति का पता बता दिया, कहने लगा-ये पास में कजौड़ीमलजी रहते हैं, गुरुवर के भक्त हैं... उनसे बात कर लो।

विद्याधर श्री कजौड़ीमलजी के निवास पर पहुँचे। अभिवादन की भावभंगिमा निःसृत हुई दोनों ओर से। फिर परिचय दिया विद्याधर ने अपना। कजौड़ीमलजी हतप्रभ रह गये जब उन्हें मालूम हुआ कि ढाई दिन से निराजल विद्याधर खड़े हैं उनके निवास पर।

स्नान/दर्शन/पूजन/भोजन सम्पन्न हुआ अजमेर की धरती पर विद्याधर का, फिर गुरुवर के दर्शन करने चल पड़े मदनगंज किशनगढ़ की ओर। प्रथम दर्शन यहीं हुए पूज्य मुनिवर ज्ञानसागरजी के, वह भी श्री कजौड़ीमल के साथ। विद्याधर के मानस में गुरु से पूर्व कजौड़ीमल जुड़ गये। एक गुरु, दूसरा गुरुभक्त। मिल गये गुरुनाथ :

कजौड़ीमलजी ने ज्ञानसागरजी से वह सब बतलाया जो विद्याधर चाहते थे। नजर भरकर देखा ज्ञानसागरजी ने विद्याधर की ओर। पूछ बैठे –

–क्या नाम है तुम्हारा?

–जी, विद्याधर।

–हूँ......तुम विद्याधर हो। मुस्काए.....फिर बोले तो विद्या सीख कर उड़ जाओगे विद्याधरों की तरह। फिर मैं श्रम क्यों करूँ?

–नहीं महाराज, नहीं, मैं उड़ने नहीं आया, मैं रमने आया हूँ। ज्ञानसागरजी की चरणरज में रमने। विश्वास करें मैं ज्ञानार्जन कर भागूँगा नहीं। कुछ पल रुककर फिर बोले विद्याधर मुनिवर से, यदि आपको मेरी बातों पर विश्वास नहीं है तो मैं शपथ लेता हूँ, आज से ही आजीवन-सवारी का त्याग करता हूँ।

जरा-सी बात से 'महान्-त्याग' का गुण भा गया ज्ञानसागरजी

को। सोचने लगे, एक प्रश्न पर इतना बड़ा त्याग कर दिया तो यह तो मेरे संकेतों पर जाने क्या-क्या त्याग सकता है। विश्वास हो गया ज्ञानसागरजी को। आगे बोले-ठीक है। रुको। बतलाऊँगा।

इन शब्दों ने प्रसन्न कर दिया विद्याधर की आत्मा को। वे थोड़ा और आगे खिसके और पकड़ लिये मुनिवर के चरण। धर दिया शीश। काँपते स्वर में बोले, गुरुवर मुझे शरण में ले लो।

विद्याधर के मानस की गंगा फूटकर आँखों के रास्ते बह निकली। धर दिया हाथ ज्ञानसागरजी ने उनके सिर पर। विद्याधर हो गये निहाल। धन्य-धन्य। गुरु की पद-रज आँज ली और ठहर गये वहीं।

गुरु गम्भीर भाव से बुदबुदाये-मेरे कहे अनुसार चलते रहोगे तो कुछ ही दिन में तुझे विद्यानन्दि बना दूँगा। अभ्यास निरंतर बना रहे, बस।

❑ ❑ ❑

बाल्यकाल से ही वैयावृत्ति के नाम पर मुनियों की सेवा करने वाले विद्याधर के हाथ सेवा करने बढ़ने लगे रोज-रोज ज्ञानसागर की ओर। निरंतर सेवाकर्म और अध्ययन प्रारम्भ हो गया विद्याधर का। सेवा करते अध्ययन करने लगे, अध्ययन करते सेवा करने लगे। कुछ ही माहों में उनका मनः भाव देख लोग दंग रह गये।

❑ ❑ ❑

एक दिन गुरु ज्ञानसागरजी ने पूछा कजौड़ीमल से-यह विद्या रात में कुछ पढ़ता-लिखता है कि बस सो जाता है पैर फैलाकर।

प्रश्न से कजौड़ीमलजी कुछ चिन्ता में पड़ गये क्योंकि उनने अभी तक कोई ध्यान ही न दिया था। सो सकुचाते हुए बोले-महाराज जी, वे रात में लिखते-पढ़ते होंगे, जरूर, पर मैंने अभी तक ध्यान नहीं दिया।

आप ध्यान न देंगे तो कौन देगा? विद्याधर का निवास कजौड़ीमल के गृह में नहीं था, बल्कि जहाँ ज्ञानसागरजी रहते थे, उन्हीं के पास एक अलग कमरा था, सो देखने के उद्देश्य से कजौड़ीमल वहीं रुक गये थे।

वचनों में बंधे कजौड़ीमलजी रात की प्रतीक्षा करने लगे। ज्यों ही

रात हुई वे विद्याधर के कक्ष की ओर ध्यान देने लगे। अभी ८ बजे होंगे, वे देखते हैं कि विद्याधर अपनी पोथी-किताबें समेट कर चटाई पर बैठ रहे हैं।

मन ही मन कजौड़ीमल मुस्काये। अच्छा है, आठ बजे से पढ़ने बैठ रहे हैं १० बजे तक पढ़ाई कर सोने लगेंगे, दो घंटे का अध्ययन पर्याप्त भी है। कजौड़ीमलजी सांध्यकालीन जाप आदि से निवृत्त हो सो गये।

रात्रि में उनकी नींद खुली तो झट से विद्याधर की ओर देखा-अरे ये तो अभी पढ़ रहे हैं। अच्छा समझे, अभी दस नहीं बजे होगे। पुनः सो गये कजौड़ीमल।

रात अपनी गति से बीत रही थी। कजौड़ीमल अपनी गति से सो रहे थे। विद्याधर अपनी गति से पढ़ रहे थे। नगर अपनी गति से शान्त बना हुआ था। अचानक कजौड़ीमलजी की नींद फिर खुली, उन्होंने फिर विद्याधर की तरफ देखा-वे तो अभी भी पढ़ रहे थे। कजौड़ीमल सोचने लगे - शायद वे ग्यारह बजे तक पढ़ना चाहते होंगे। वे फिर सो गये।

वृद्धावस्था में जितने जल्दी नींद खुलती है, उतने ही जल्दी लग भी जाती है। कजौड़ीमलजी अपनी वृद्धावस्था का पुरस्कार इसी तरह पा रहे थे। उनकी नींद इस बार खुली तो उन्हें अपने पूर्व अन्दाजों पर विश्वास न हुआ, उठकर ब्रह्मचारी जी के पास जा पहुँचे। वे उत्साह से अध्ययन कर रहे थे। सामने घड़ी रखी थी। कजौड़ीमलजी की दृष्टि घड़ी पर पड़ी तो चिन्तित हो पड़े-अरे ब्रह्मचारी जी बंद करो पढ़ाई, एक बजने वाला है, कोई कल परीक्षा नहीं अटकी है?

मुस्काये विद्याधर, फिर धीरे से बोले-मेरी तो रोज परीक्षा अटकी है।

-अटकी होगी। अब सो जाओ। अधिक देर तक जागना अच्छा नहीं।

-मुस्काए विद्याधर, जैसे कजौड़ीमलजी कोई पते की बात कह रहे हो। किताबें-समेटी और चटाई पर फैल गये।

कजौड़ीमल भी चुपचाप अपनी शैया पर जाकर सो गये।

❑ ❑ ❑

सुबह दोनों को तड़के उठने की आदत थी। दोनों उठे भी और अपने-अपने कार्य में लग गये।

कजौड़ीमलजी ज्ञानसागरजी के दर्शन कर बैठ ही रहे थे कि पूछ लिया। उन्होंने-क्यों, ध्यान दिया था रात में?

-दिया था, महाराज। मैं जितनी बार उठा, वे मुझे जागते-पढ़ते ही मिले। अच्छा ध्यान लगता है उनका पढ़ने में। बड़ा होनहार शिष्य है आपका। सेवा और अध्ययन में ही उसका ध्यान रहता है। रात्रि आठ बजे से एक बजे तक पढ़ते हैं और सुबह साढ़े चार बजे उठकर पुनः प्रभाती आदि में लग जाते हैं। मैंने अपनी आँखों से देख लिया है।

कजौड़ीमल को सुनकर श्री ज्ञानसागरजी महाराज को खुशी होना स्वाभाविक थी। पुत्र की प्रशंसा से प्रसन्न होते पिता की तरह, शिष्य की प्रशंसा से गुरु की छाती फूलकर दूनी हो गई। उन्हें लगा कि उनका यह प्यारा शिष्य अभी तक कहाँ छुपा था? यह और पहिले क्यों नहीं आ गया अजमेर? सेवा और समर्पण के भाव ने पथ प्रशस्त किया और गुरु का उपदेश मिलने लगा विद्याधर को। धीरे-धीरे ज्ञानसागरजी विद्याधर को पढ़ाने का समय देने लगे। थोड़ा, फिर अधिक, फिर और अधिक। तीसरे माह से यह हाल कि वे विद्याधर को पढ़ाने में चार घंटों से लेकर आठ घंटों तक का समय देने लगे। खुद तो पढ़ाते ही, पंडित महेन्द्रकुमार शास्त्री भी उन्हें पढ़ाने पहुँचने लगे। संस्कृत, कभी हिन्दी। ग्रन्थ पर ग्रन्थ उल्टे जाने लगे। पंडित महेन्द्रकुमार शास्त्री ही आगे चल कर मुनि समतासागर बने थे और आत्मविकास का श्रेष्ठ गौरव पाया था। वे विद्याधर को पढ़ाते समय बड़े सचेत रहते थे। एक दिन का पाठ दूसरे दिन तक पूर्णरूपेण याद हो जाने पर ही वे विद्याधर को अगला पाठ पढ़ाते थे। रात्रि में ९ से १० का समय 'उनका समय' होता था। व्याकरण का मान्य ग्रन्थ, कातंत्ररूपमाला, शास्त्री जी ने पढ़ाया था। छन्द-शास्त्र का अध्ययन भी उन्हीं ने कराया था।

❑ ❑ ❑

विद्याधर पढ़ने-लिखने-सीखने में बचपन से ही होशियार थे। कुशाग्र

बुद्धि। उन्होंने अपने ज्ञान और विवेक जन्य श्रम से मुनि ज्ञानसागर को ऐसा प्रभावित किया कि मुनि श्री अपने अंतस् का संपूर्ण अध्यात्म, संपूर्ण साहित्य, संपूर्ण ज्ञान उनके हृदय रूपी गमले में उड़ेल देना चाहने लगे। उनके सान्निध्य में विद्याधर नित-नवीन विद्याएँ अर्जित करने लगे। साधना और आराधना का कठिन पथ उन्होंने हृदय से स्वीकार जो कर लिया था। रात दिन चिंतन मनन चलता। व्रत-उपवास चलते और चलती रहती पल-पल गुरु-भक्ति, गुरु-सेवा, गुरु-टहल।

❑ ❑ ❑

दशलक्षण पर्व प्रारम्भ हो चुका था। पू॰ ज्ञानसागरजी ने विद्याधर से कहा-तत्त्वार्थसूत्र का पाठ करो। विद्याधर को सूत्रजी अच्छी तरह से याद थे, अतः वहीं बैठकर उन्होंने बोलना प्रारम्भ कर दिया। ज्ञानसागरजी चकित कि इसने हाथ में पुस्तक नहीं ली, अब बीच में फिर उठना पड़ेगा इसे पुस्तक के लिए।

पर उनके लगातार मौखिक बोलते चले जाने के क्रम से गुरुजी प्रसन्न हो गए और उपस्थित दर्शक/श्रोता/भक्त/श्रावक हो गए हर्षित उनकी चातुरी से।

विद्याधर की यात्रा 'बिन्दु' से 'सागर' की ओर हो पड़ी और ज्ञानसागरजी का मन 'समुद्र' से 'बिन्दु' की ओर हो पड़ा। बिन्दु सिन्धु में समाहित होना चाहता था। सिन्धु बिन्दु को अपने में समेट लेना चाहता था। अजमेर की धरती पर गुरु-शिष्य की सात्विक-परम्परा जन्म लेने बेचैन थी। अजमेर के आकाश से ज्ञानामृत बूँद-बूँद बरस जाने आकुल था।

सदलगा का मोह-राग :

श्रवणबेलगोला की शीतांश-हवाएँ चल कर सदलगा के मंदिरों से टकराई। मंदिर में जनकंठ मुखरित हो पड़े- विद्या उत्तर की ओर चला गया! समाचार मंदिरों से घर-दर-घर फैल गया। सदलगा के लोगों पर बेलगोला का जादू कम सा हो पड़ा, वहाँ जब विद्या नहीं तो ......?

मारुति, राजकुमार, पुण्डलीक, शिवकुमार और तम्हा जैसे प्रियजन

उस रोज एक दूसरे की चोरी से अश्रु पोंछते रहे और अपने को धन्य मानते रहे। उनके बीच का एक व्यक्ति इतना निर्मोही निकला कि सबको छोड़कर उत्तर में जा पहुँचा अजमेर। और वे.' इतने मोही कि सब इकट्ठे/साथ-साथ रहते हुए भी दुखी हो पड़े 'एक' के लिए।

मोह ने सभी पर जादू चला रखा था, तभी तो मंदिर का घंटा बजता तो श्रीजी को लगता जैसे उससे निकली ध्वनि पुकार रही हो विद्या ...विद्या। शिवकुमार कार का हार्न बजाते तो हार्न में विद्या शब्द ध्वनित होता लगता। मारुति खेत में किसी को पुकारता तो उसकी आवाज 'विद्या' बनकर लौट आती उसी के कानों में।

शांता और सुवर्णा विद्या की किताबें कंघी, शीशा देखती तो बुदबुदाती 'विद्या भैया की है'।

मल्लप्पाजी का देहात्म भी बेहाल हो गया था। जब भी वे महावीर, अनन्तनाथ या शांतिनाथ को बुलाते तो मुँह से निकल पड़ता 'विद्याधर' फिर भूल को ठीक करते और अन्य नाम को उचारते। सब एक दूसरे को देखते रह जाते।

❑ ❑ ❑
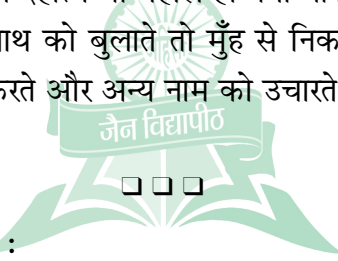
आत्मा की अनुगूँज :

''मुझे पढ़ना हैं। मुझे कुछ सीखना है। मुझे कुछ कहना है। मुझे कुछ खोजना है। मुझे साहित्य जानना है। साहित्य का वैभव पहचानना है। मुझे व्याकरण के आधार बिन्दु जानना है। मुझे संस्कृत भाषा में परिपक्व होना है। मुझे अपभ्रंश बोली के संकेत देखना है। मुझे आत्म-विकास करना है। मुझे मस्तिष्क पर ज्ञानगंगा धारण करना है। मुझे चरित्र का समुद्र पार करना है। मुझे तपस्या का मरुस्थल हरित करना है। मुझे सेवा का संपूर्ण भार उठाना है। मुझे गुरु-आज्ञा पर ही चलना है। मुझे गुरु के इंगित पथ पर ही रहना है''- कच्ची उम्र के विद्याधर के मानस में पक्के विचारों का उदय हो पड़ा था। उन्हें बहुत कुछ करना है, वे जानने लगे। थे। उन्हें जो करना था वह इसलिए सरल जान पड़ता था कि उन्हें ज्ञानसागरजी जैसे गुरु

का वरद्हस्त मिल गया था प्यासे को समुद्र सा। भटके को दीप-सा। भूले को पथ-सा।

विद्याधर का मंतव्य ज्ञानसागरजी की समझ में आता जा रहा था, उनके कर्मठ हाथ ज्ञानसागरजी की गठिया से पीड़ित कोहनियों को मलते कभी घुटने को, कभी कमर को तो कभी पगतलों को। श्रद्धा से लबालब भरी हथेलियों का स्पर्श वह सब कह देता, जो संकोच भरे विद्या के अधर न कह पाते।

राजस्थान की तीव्र ग्रीष्म से झुलसा आदमी-आदमी रात को आँगनों में बरस रही ठंडक में सोने-लेटने बेचैन रहता, तब विद्याधर जैसा सरलस्वभावी शिष्य अपने गुरुवर के कक्ष की गरमी से जूझ रहा होता। गुरुवर गठियावात के कारण खुले आकाश के नीचे न सो पाते, पड़े रहते बंद कमरे में, वात की तड़पन और मौसम की तपन सहते। ऐसे में विद्याधर गुरु को बंद कमरे में छोड़ खुली हवा का सुखद स्पर्श कैसे करते? गुरुभक्त विद्या उनके मना करने पर भी काया के सुख को प्राप्त करने प्रांगण का खुला वातास अस्वीकार देते और भट्टी की तरह तपे कक्ष में रात भर रुककर टहल संपन्न करते। गुरुवर कहते-''जा तू बाहर सो जा। दिन भर की तीव्र तपन के बाद ठंडक के मंद झोंके मिल जायेंगे।'' विद्याधर गुरुवर के शब्द सुन मुस्काते रहते, फिर कहते-मुझे आपके पास रुकने से न गर्मी लगती, न ठंड, आप निश्चिन्त रहें, मैं ठीक हूँ।

प्यारे शिष्य का आदर-भाव एवं सेवा-भाव देखकर चकित थे वृद्ध ज्ञानसागर। कहते तू वैद्य बन कर आया है मेरी वैयावृत्ति के लिए।

सेवा, आदर, श्रम, विनम्रता, लगन, निष्ठा और निष्कपटता रोज-रोज पाते विद्या के स्पर्श में। गुरु हो गये निहाल। देते रहे अपने सामीप्य का लाभ। करने लगे हृदय-हृदय की चर्चा। सींचने लगे एक मस्तिष्क का अमृत दूसरे पर।

यह वैद्य है या जादूगर :

सेवा और संकल्प की गंगा बह पड़ी अजमेर की उस नसियाँ के

प्रांगण से। देखने-समझने वाले बतलाते कि गुरुभक्ति की ऐसी मिसाल कहीं अन्य देखने नहीं मिली।

मगर विद्या को तो मिसाल बनने/बनाने से कोई प्रयोजन न था। वे तो अपने पथ पर थे। बस। उस पथ पर रहकर यह सब करना होता है, यह वे अच्छी तरह जानते थे।

ज्ञानसागरजी के गले में दर्द हुआ। विद्याधर जाने कैसे जान गये। बस, स्निग्ध उंगलियाँ सहलाने लगीं उनका गला, गले का वह बिन्दु जिस पर दर्द ने आक्रमण किया था। उनके सहलाने से जाने क्या जादू होता कि कुछ ही क्षणों में ज्ञानसागरजी का दर्द विदा ले जाता। वे कभी विद्या को देखते, कभी उनकी गोरी-गोरी स्वच्छ अंगुलियों को। बुदबुदाते-इसके हाथ में जादू है।

वह अध्ययनशील शिष्य :

एक दिन विद्या की प्यासी दृष्टि ज्ञानसागरजी के देह के भूगोल को, दक्षिणध्रुव से उत्तर ध्रुव की ओर पढ़ती हुई रुक गई उनके नेत्रों पर जाकर। गुरु ने भी विद्या के नेत्र देखे। देखकर उन नेत्रों की चाह समझने की कोशिश करने लगे। उनने उन मोतियों में देखा कि ये जिनवाणी-माता के चरणों में अर्घ्य की तरह चढ़ जाने आकुल-व्याकुल हैं। उन्होंने समीप ही रखा ग्रन्थ उठाया और विद्या को दे दिया। बोले केवल इतना-''तुझे अब पढ़ाता हूँ।''

ग्रन्थ के ऊपर दृष्टिपात की विद्या ने, लिखा था-'सर्वार्थसिद्धि।' पूज्यपाद स्वामी का वह महान् ग्रन्थ विद्या के हाथों में खिल उठा। उसे पुष्प की तरह संभालकर ले आये, अपनी बाजौट पर, हो गया अध्ययन शुरू।

जो श्रम देते थे सेवा में, वह ही, वैसा ही देने लगे अध्ययन में।

विद्या पढ़ते।

गुरु पढ़ाते।

पढ़ते।

पढ़ाते।

बीतने लगी उम्र सही मार्ग पर। विद्या हो गये गुरु ज्ञानसागर के पथानुगामी। पथ के पुष्प गुरु चरणों पर चढ़ाते, शूल स्वतः स्वीकार कर लेते।

कुछ ही दिनों बाद गुरुवर ने जैनाचार्य की महान् रचना 'कातन्त्र रूपमाला' पढ़ा दी विद्या को। इस ग्रन्थ को पढ़ने-समझने-सोचने में साधारण विद्यार्थियों को एक से दो वर्ष का समय लग जाता है, पर छात्र विद्या को लगे मात्र छह माह।

मेधावी छात्र को पाकर गुरु उसी तरह गद्गद् होता है जिस तरह व्यापारी खरी मुनाफा को पा।

विद्या की मेधा छुपी नहीं रह सकती थी, वह धूप की तरह नित-नित चमकती और गुरुवर का हृदय-आकाश उसकी चमक से आलोकित हो जाता, गुरुवर की मुस्कान बरसने लगती विद्या पर।

'ब्रह्मचारी विद्याधर' गुरु तो गुरु, हर आने-जाने वाले श्रावक के मन तक उतर गये। वे सभी को प्यारे लगने लगे। समाज के दुलारे हो पड़े। हर श्रावक प्रश्न खोजता उनसे कुछ बात करने के लिए। जो श्रावक मुनि श्री ज्ञानसागरजी के ज्ञान से प्रभावित थे, वे उनके जीवंत ज्ञानपिण्ड, प्रिय शिष्य, विद्याधर से भी उतने ही प्रभावित होने लगे। वे हो गये अजमेर-समाज के समक्ष-ज्ञानपिण्ड, सेवापिण्ड और तपस्यापिण्ड के प्रतीक। तीन तत्त्वों के महापिण्ड। उनसे कई व्यक्ति प्रश्नों के बहाने बात करना चाहते थे पर विद्याधर किसी को अवसर ही न देते।

न टहल स्वीकृत, न भेंट :

हृष्ट-पुष्ट, गोरे-चिट्ठे, विनम्र, लजीले, युवक को ब्रह्मचारी वेष में देखकर सभी का जी जुड़ाता था। जिसका जी जुड़ाता वह आपो-आप विद्याधर की बड़ी-बड़ी आँखों से भी जुड़ जाता था। लोग घर पहुँचकर कमल की तरह खिलते हँसते उनके नेत्रों को क्षणभर भी न भूल पाते। हर माता-पिता अपने पुत्र को देखना चाहता उनकी छवि में। हर बहन अपने

भाई को खोजती उस मनोहर स्वरूप में और हर युवक अपना ही चेहरा देख लेना चाहता था विद्या के चेहरे पर।

लोगों का वात्सल्य भाव प्रबल हो पड़ा। सभी प्रिय विद्याधर को कुछ न कुछ देना चाहते थे, परन्तु विद्याधर थे अपरिग्रह-पथ के यात्री...क्या ले सकते थे? दिन में एक बार शुद्ध आहार लेने के बाद वे समाज से कुछ भी ग्रहण नहीं करना चाहते थे, मात्र गुरुवर से जो और जितना ग्रहण हो जाये, वह बहुत है। मगर श्रद्धालु-समाज कब मानने वाला था, कोई सज्जन ग्रन्थ लाकर विद्या को देना चाहते तो कोई पेन, कोई कागज, तो कोई सफेद वस्त्र-धोती। लोग लाते, प्रयास करते पर विद्याधर मना कर देते। वे कुछ भी न लेते। श्रावक दुखी होकर अपनी वस्तुएँ वापस ले जाते और टोह में रहते कि कभी कुछ दे पाऊँ तो धन्य हो जाऊँ।

ममता और वात्सल्य की मूर्ति माने जाने वाले एक सेठजी ब्रह्मचारी विद्याधर की धोती पर दृष्टि रोपे थे। वे रोज दर्शनोपरान्त सोचते कि ब्रह्मचारी विद्याधरजी यह मोटी धोती हटाकर उनके द्वारा लायी गयी फाइन (अच्छी) धोती धारण कर लेते तो अच्छा रहता। वे जो 'फाइन' धोती लाये थे, कीमती थी, कोमल भी। पर विद्याधर को दे नहीं पा रहे थे।

एक दिन सेठ जी ने गुरुवर ज्ञानसागरजी से पूछा- महाराज श्री कृपया यह तो बताइये कि ब्रह्मचारी गणों को कितने दिनों में अपना पुराना अधोवस्त्र बदल देना चाहिए? ज्ञानसागरजी ने सहज भाव से कह दिया- जब वह फटने लग जाय तब।

उस दिन से तापस-भक्त सेठजी रोज भगवान् से यही प्रार्थना करते कि ब्रह्मचारी विद्याधर की पुरानी धोती फट जाये। देखते-देखते वे थकने लगे, पर उनकी मोटी धोती फटने का नाम ही न ले रही थी।

आखिर एक दिन सेठ जी को उसमें एक छोटी-सी खोप लगी हुई दिख गई। वे दौड़ते हुए घर पहुँचे और पूर्व में खरीदकर रखी गई कीमती धोती लेकर ब्रह्मचारी जी के समक्ष जा पहुँचे। श्रद्धा उड़ेलते हुए बोले- ब्रह्मचारी जी, आपकी धोती फटने लगी है, कृपया उसे बदलकर यह नई

धारण कर लीजिए। चौंक गये विद्याधर। गुरु जी से पूछे बगैर यह सब कैसे संभव है? और फिर पुरानी धोती अभी फटी कहाँ है, उसमें तो एक छोटा सा छिद्र निकल आया है। बस। सहज होकर बोले- सेठजी, अभी पुरानी धोती ठीक है।

–नहीं ब्रह्मचारी जी, वह फट गई है।

–फटी नहीं, उसमें छिद्र हुआ है।

–तो भी आप बदल लीजिए।

–नहीं बाबा, अभी आवश्यकता नहीं है।

बात न बनते देख, भक्ति और प्रेम में बंधे सेठ ने पैंतरा बदला–मैंने गुरुजी से पूछ लिया है, वे भी कहते हैं।

सेठ की बातों से विद्याधर मुस्का पड़े। बोले, रुको, अभी बतलाता हूँ।

पहुँच गये गुरु चरणों के समीप। साथ में ले गये सेठ को। बतलाया उसका मन्तव्य। गुरुवर सब कुछ भाँप चुके थे। बोले–हां मैंने सेठ को बोला था कि पुरानी धोती फट जाने पर नवीन धारण करनी चाहिए।

मगर...... मगर......। बोल न पा रहे थे विद्याधर गुरुवर के समक्ष। साहस करके एक वाक्य ही बोले- मगर महाराज श्री अभी पुरानी धोती फटी ही कहाँ है? और लौट आये निज स्थान पर। पीछे सेठ जी भी आ गये। विद्याधर जब पाल्थी मारकर बैठ गये, तब बोले सेठ जी उनसे– ब्रह्मचारी जी, अब तो गुरुजी ने भी कह दिया, कृपया नवीन धोती, ग्रहण कीजिए।

संकोच में पड़ गये विद्याधर। उनका अपरिग्रहवाद सेठ जी के कारण खतरे में पड़ रहा था। वे सेठ जी की भक्ति–भावना को पहचान रहे थे, पर असमर्थ थे, अतः जी कड़ककर बोले–अभी तो ले जाइये यह धोती, समय आने पर बतलाऊँगा।

शांत हो गये सेठ। नवीन धोती सहित वापस आ गये निवास पर। परन्तु सेठ मात्र सेठ नहीं थे, वे थे एक धर्मज्ञ–श्रावक, एक विद्वान् नागरिक।

उन्हें विश्वास हो गया कि ज्ञानसागर का यह शिष्य भविष्य में तपस्वियों का सम्राट् होगा। वे मंद-मंद मुस्काते रहे। उन्हें अपने प्यारे तपस्वी का निर्णय अच्छा लगा। उनकी श्रद्धा द्विगुणित हो गयी। वे भारत की स्वस्थ मुनि परम्परा की श्रेष्ठता पर विचार करने लगे। यह युवा तपसी कल कोई अति श्रेष्ठ परम्परा को जन्म देगा। यह महावीर के अपरिग्रह को आमूलचूल समझ रहा है, यह अपरिग्रह के क्षेत्र में भी कोई मौलिक सुधार प्रदान करेगा, भविष्य में नई सीमाएँ बनायेगा। नये क्षितिज गढ़ेगा। नई ऊँचाइयों को स्पर्श करेगा। धन्य है वह युवा योगी!

❑ ❑ ❑

कसौटी बनी परिणाम :

ब्रह्मचारी हुए अभी कुछ ही माह बीते थे किन्तु उन्हें कसौटियों की चुनौतियों से होकर नित-नित निकलना पड़ रहा था।

एक दिन पारस-पारखी, गुरुवर ज्ञानसागरजी महाराज ने चुपके से अपनी पिच्छिका के पंख बिखेर दिये और फिर सहज होकर बोले-विद्याधर इस पिच्छिका को पुनः बना सकते हो?

-जी गुरुवर। -

-कैसे? पहले कभी बनाई है?

-नहीं, पर देखता रहा हूँ।

-तो क्या देखने भर से बना डालोगे?

-जी।

-अच्छा बनाओ।

प्रखर बुद्धि वाले विद्याधर जी ने शास्त्रों में वर्णित विद्याधरों की तरह आनन-फानन पिच्छिका बना डाली। पहले से अधिक गसी-गसी और अधिक सुडौल/सुन्दर/ हल्की। ले जाकर गुरु चरणों के निकट रख दी।

गुरुजी ने पिच्छिका उठाकर देखी तो काफी देर देखते रहे, जैसे कोई नई वस्तु पहली बार देख रहे हों। फिर विचार करने लगे कुछ। विचार करते हुए ओंठ हिलाये-ब्रह्मचारीजी, आप समझदार हो चुके हैं। तपपूर्ण, संयमपूर्ण

और सेवापूर्ण हो चुका है आपका अनुभव। सही में अब पिच्छिका लेने योग्य हो गये हैं आप। विद्याधर काष्ठवत् मौन रह गये। कुछ न समझ सके। गुरुवाणी सुनते रहे, बस। उन्हें उस समय नहीं समझ में आया कि गुरुवाणी में उन्हें आगे बढ़ाने का संकेत किया गया है।

❑ ❑ ❑

मीत की खबर कब आयेगी :

कोई तीर्थ यात्री संघ कभी सदलगा से निकलता तो वहाँ के लोग उनसे अजमेर के विषय में अवश्य पूछते थे, क्या आप अजमेर गये हैं? तीर्थयात्री न कर देते तो भी सदलगा निवासी चुप न रहते, प्रश्न कर बैठते–क्या आप भविष्य में कभी वहाँ जायेंगे? इस बार भी 'न' हो जाता तब कहीं चुप हो पाते।

जो यात्री उत्तर भारत के तीर्थों को जाते, उनके आगे प्रस्ताव रख देते–जब आप श्री महावीरजी जायेंगे तो वहीं से अजमेर भी अवश्य जाइये, वहाँ परम पूज्य ज्ञानसागर महाराज के समीप आपको सदलगा का एक योगी अवश्य मिलेगा, उनसे मिलिये और हाल–चाल पूछिये। फिर वे अपना लिखित पता यात्रियों को देते और अनुरोध करते–युवा योगी बाल–ब्रह्मचारी विद्याधर का हाल–चाल पत्र से सूचित कर देना। यहाँ उनके माता–पिता, भाई बहन निवास करते हैं, आपके पत्र से उन्हें बोध लग जायेगा।

यात्रियों के प्रस्थान करने के तुरंत बाद सदलगा के वे लोग प्रतीक्षा करने लगते पत्र की।

धीरे धीरे विभिन्न माध्यमों से जब–तब, विद्याधर के समाचार सदलगा पहुँचने लगे, लोगों को चैन मिलने लगा।

एक यात्री ने कई महीने बाद सदलगा के योगी के विषय में जानकारी भेजी सदलगा वासियों को कि विद्याधर को कभी भी मुनिपद की दीक्षा प्राप्त हो सकती है, वर्तमान में वे कठिन परीक्षणों और तपों से होकर गुजर रहे हैं। नित नए व्रत उपवास स्वीकार कर रहे हैं। यों ज्ञानसागरजी से पता

नहीं चलता, न विद्याधर बतलाते, फिर भी हम लोगों की आँखों ने जो देखा है वहाँ, उससे यही, आभास होता है। कठिन साधना और आराधना की घड़ियाँ हमने अपने नेत्रों से स्वत: देख ली हैं।

ऐसे पत्रों से संबंधी व सदलगावासी कौतूहल में पड़ जाते और विचार करने लगते–काश एक नजर हम भी देख पाते। मगर रह जाते चुप, दक्षिण से उत्तर की भौगोलिक दूरियाँ जो जानते हैं।

यात्रियों के पत्र, संदेश एवं सदलगा के श्रावकों की चर्चा से, विद्याधर के माता-पिता को राहत मिलती थी। जी करता, कहीं न कहीं से समाचार मिलते ही रहें। कोई विद्या की चर्चा करता ही रहे।

अजमेर जाने की तैयार में सभी रहते। माता-पिता तो चाहे जब कहते–तीर्थ को जाना है। पर पारिवारिक विसंगतियाँ उन्हें पग न बढ़ाने देती। शिवकुमार और तम्हा भी अजमेर जाने का मन्तव्य व्यक्त कर चुके थे पर परिस्थितियों के शिकार वे भी हो जाते। जब कोई न निकल पाता तो मारुति कहता–मुझे रास्ता समझा दो मैं चला जाता हूँ। पर अकेले वह भी न निकल पाता, किसी के साथ की प्रतिक्षा में बैठा रहता।

मारुति की हृदयगत छटपटाहट महावीर बाबू जानते थे। उनकी दृष्टि में मारुति उनके परिवार का आज्ञाकारी विश्वस्त कर्मचारी भर न था, वह था विद्याधर के बाल्यकाल का सखा। हाँ जैसे कृष्ण के सखा सुदामा थे। मारुति की पूछ इसीलिए कुछ अधिक ही होती थी परिवार में।

शान्ता और सुवर्णा सोचती कि चार दिन के लिए उन्हें पंख ऊग आते तो उड़कर चली जाती विद्याधर योगी के पास। वे इतनी अल्पवयस्क थीं कि स्वतंत्रता से आने-जाने की बात कह ही न सकती थीं।

सदलगा के मंदिरों में शास्त्र/प्रवचन के पश्चात् अक्सर विद्याधर की चर्चाएं छिड़ जातीं। तब लोग अपना-अपना नैकट्य खुले मुँह बखान करते थे आपस में। जिसके घर एक बार भी, कभी विद्याधर गए होंगे, वे कहते वह तो मेरे यहाँ आते ही रहते थे, बड़ा उठना-बैठना होता था उनके साथ। दूसरा कहता-मेरे यहाँ हर हफ्ते आते थे। तीसरा नहले पर दहला मार देता-

मेरे घर तो हफ्ते में दो बार आते थे। ममत्व की बौछार का मजा भी विचित्र होता है। लोग मंदिर में बैठकर मोह युक्त चर्चाएं करते। चर्चाओं में अतिशयोक्तियाँ ले आते। पहले से बढ़कर दूसरा और दूसरे से बढ़कर तीसरा विद्याधर से अपनी प्रगाढ़-मैत्री व समीपता ज्ञापित कर देता। आनन्द तो तब बढ़ गया एक दिन जब एक सज्जन लबक में कह पड़े-विद्या तो मेरे यहाँ प्रायः रोज आते रहते थे।

इस प्रकार की चर्चाओं में जो रहस्य रहता हो, पर बतलाने वाले अपने मधुर संबंधों का वर्णन ही करना चाहते थे और कुछ नहीं। यही तो सांसारिकता का उच्च आदर्श है। प्रिय व्यक्ति जितनी दूरी पर जाता है, उसका स्मरण उतना ही अधिक आता रहता है।

वहीं, बैठे-बैठे, चुपचाप सुन रहे थे सदलगा के विशिष्ट नागरिक, कहें पंच, श्री अन्ना साहिब पाटिल। बस्ती के बड़े मंदिर के सामने है उनका मकान। घर से मंदिर को निकलते तो विद्या को बुला लेते, फिर मिलकर पूजन-अभिषेक करते। वे उस रोज सबकी चर्चा में सम्मिलित नहीं हुए और शांत बैठे रहे।

कौन जानता था कि शांत बैठकर कुछ सोचने वाले पाटिल साहब विद्याधर के गृह-त्याग से प्रेरणा ले रहे थे मन ही मन।

(उनका सोचना यही हुआ, वे कालान्तर में ऐलाचार्य (अब आचार्य प्रवर) मुनिवर विद्यानन्द जी से दीक्षा प्राप्त कर लेने में सफल भी हुए।)

माता-पिता का सोच ऐसे समय क्यों रुकता, पुत्र को लेकर मोह-ममत्व का हिमालय तो वहीं होता है। उन्हें घर में कुछ भी कैसे अच्छा लगता? कुछ अच्छा बनाकर खाने की इच्छा तक खत्म हो गई। दृष्टि बोझिल रहती। इस दरवाजे पर वह हाथ रखकर खड़ा होता था, इस कुर्सी पर धम्म से बैठता था, इस पलंग पर चुपचाप सोता था। यही बोध लदा रहता आँखों पर।

त्यागी विद्याधर का सदलगा कुछ समय के लिए मोह का गढ़ बन गया था। वहाँ का वह हर प्राण जो विद्या को जानता था, मोहासक्त हो गया

था।

❑ ❑ ❑

अजमेर का अपनत्व :

अजमेर में उन दिनों त्याग बरस रहा था, वहाँ हर प्राण विद्याधर को गहराई से जानने लगा था, त्याग की परिभाषा समझाने लगा था। ज्ञानीजन आपस में चर्चा करते रहते। एक कहता–तप–सेवा–निष्ठा और ज्ञान को एक मूर्त्य देखना हो, 'फोर इन वन' तो देखो विद्याधर को। कोई कहता– यौवन को पराजित करने वाले बालब्रह्मचारी को देखना हो तो देखिए विद्याधर को...।

विद्याधर की चर्चाएँ आम हो गईं। पर अजमेर की आँखों में सदलगा की आँखों की तरह कुछ खो देने का पश्चाताप या दुख नहीं था, बल्कि कुछ श्रेष्ठ पा जाने का गौरव था। आ गया था एक उजास सभी की दैनिक चर्या में यहाँ। मुनि संघ की विशेष चर्याएँ चातुर्मास–स्थापना से प्रारम्भ हो चुकी थीं। विद्याधर जी के लिए तपस्या और गुरुसेवा ही प्रमुख कार्य थे। वे गुरु की छाया बनकर कार्य करते थे।

पीड़ा का राजकुमार :

एक दिन की बात। रात को वे गुरुवर ज्ञानसागरजी को लघुशंका से निवृत्त कराकर लौट ही रहे थे कि एक बिच्छू ने उनके चरण स्पर्श कर लिए। बिच्छू तो धन्य हो गया, पर विद्याधरजी पीड़ा के सागर में डूबने उतराने लगे। उन्होंने गुरुजी को यथा स्थान पहुँचा दिया, उसके बाद बिच्छू द्वारा दिए गए कष्ट को सहने का रास्ता खोजने लगे। पीड़ा ने उन्हें निरुपाय बना दिया था। ज्ञानसागरजी ने अन्य शिष्यों को संकेत दिया कि श्रावकों को खबर कर दो ताकि कुछ अनुकूल चिकित्सा हो सके और लम्बी रात की पीड़ा कम की जा सके। परन्तु तपस्वी विद्याधर जी ने आदरपूर्वक मना कर दिया। वे दूसरे कमरे में जा पीड़ा को आत्मसात कर भक्तामर स्तोत्र का उच्चारण करने लगे। भक्तामर स्तोत्र का पाठ पूरी रात चला और टहलते–टहलते ही निकाल दी वह लम्बी रात उन्होंने। उनके इस दृढ़–भाव से

क्षुल्लकों और ब्रह्मचारियों को शिक्षा मिली सो मिली, गुरु ज्ञानसागर की आँखों में भी नया बोध जागा–यह महान् तपस्वी बनेगा भविष्य में। इसकी सहनशक्ति अपार है।

उपसर्गों को हँसकर सहने वाले ब्रह्मचारी जी जन–जन के मन में निष्ठा, दृढ़ता और अडिगता के भाव भर रहे थे, बिच्छू तो मात्र निमित्त था शिक्षा प्रदान करने का।

बिच्छू के जहर की पीड़ा तीन दिन तक रही। शरीर तड़पता रहा, पर आत्मा केन्द्रित रही।

❑ ❑ ❑

सुकुमार ललन को मुनि न बनाओ :

श्रावकों–श्रेष्ठियों के घर पर चर्चा जोर पड़ने लगी कि विद्याधर को मुनि दीक्षा दी जाने वाली है गुरुवर श्री ज्ञानसागरजी द्वारा।

श्रावकजन किलप उठे। नई उम्र में मुनि दीक्षा? उन्हें दुख हो आया। विद्याधर की कच्ची उम्र मुनि–चर्या की वज्रता कैसे सहेगी? कुछ ऐसे भी सीमित ज्ञान वाले थे जो उल्टा बतला बैठते– अभी विद्याधर बहुत कम उम्र के हैं, कहें कच्चे युवा हैं। उन्हें मुनिपद दिया गया और कहीं कल को कुछ ठीक–ठाक निर्वाह न कर सके तो देश के सारे समाज को नीचा देखना पड़ेगा। आदि आदि।

धीरे–धीरे नगर में तीन दल हो गये। पहला दल उनका था जो कड़े गले से कहने के लिए तैयार थे कि विद्याधर को इतनी नई उम्र में मुनि दीक्षा न दी जावे। यह था समृद्ध सेठों–साहूकारों का दल।

दूसरा दल उनका था जो उनकी कच्ची उम्र और मुनिचर्या के संभावित कष्टों को देखकर मन ही मन दुखी था।

तीसरा दल सबसे बड़ा था और आम–श्रावकों का था, जो यह विश्वास करता था कि गुरुवर ज्ञानसागर जो कुछ करेंगे, सोच समझकर करेंगे, उन्हें धर्म, समाज और देश का बोध है। जो होगा, उचित होगा।

तीनों दल अपनी अपनी प्रतिक्रियाएँ मंदिरों, शास्त्र–सभाओं और

हाट-दुकानों में प्रकट करते रहते।

धीरे-धीरे वह दिन समीप आ गया जिसे मुनि दीक्षा के संदर्भ में इतिहास का सुनहरा पृष्ठ मिलने वाला था।

प्रथम दल के सम्पन्न घराने वाले लोगों को पता चल गया कि विद्याधर को ३० जून, १९६८ को गुरुवर ज्ञानसागरजी जैनेश्वरी-दीक्षा प्रदान करेंगे। ३० जून का दिन दूर नहीं था। दो दिन ही शेष रह गये थे। प्रथम दल के दस-पाँच गणमान्य श्रेष्ठि सर सेठ भागचंद सोनी के साथ पहुँचे गुरुवर ज्ञानसागरजी के पास। 'नमोऽस्तु' के बाद सभी गम्भीर बन गए और महाराजश्री की ओर शंकालु दृष्टि से देखने लगे।

महाराजश्री चुप रहे आए। तब मौन तोड़ा भागचंद जी ने। हाथ जोड़कर बोले–गुरुवर आप स्वतः प्रकाण्ड विद्वान् हैं, महातपसी हैं, अतः आप ही बतलाइए कि साढ़े इक्कीस वर्ष का युवक मुनि पद की कठिन चर्या का निर्वाह कैसे कर सकेगा? आपका यह कदम अभी न उठे, चार वर्ष बाद उठे तो अच्छा रहेगा। तब तक के लिए आप चाहे तो ब्रह्मचारी जी को क्षुल्लक और ऐलक अवस्थाओं की प्रतीति करा सकते हैं। शीघ्रता क्यों?

शांत बने रहे गुरुजी। उनसे पुनः अनुरोध दोहराया गया श्रेष्ठियों द्वारा, तो बोले-मैंने सब सोच-समझ लिया है। विद्याधर को समीप से परख लिया है। वह इस कार्य में न केवल सफल होंगे, बल्कि मुनिपद की गौरव गरिमा बढ़ाएँगे। आप लोग निश्चिन्त रहे।

-मगर अभी चार वर्ष रुक जाएं महाराज जी तो ठीक होगा।

- क्यों?

-अभी उम्र कम है।

-मुनि पद के लिए आपके ग्रन्थ में क्या उम्र प्रस्तावित है? कहाँ लिखी है अर्हताएँ? बतला सकते हैं सेठ जी?

-जी यह तो नहीं मालूम, पर हमारा मन कहता है कि इतनी छोटी उम्र में न दी जाए दीक्षा।

–मन के कहने पर आप चल रहे हैं, यही है आपकी गलती। आप जो देख रहे हैं और जो यथार्थ है, उसके कहने पर कब चलेंगे?

–महाराज जी यह प्रस्ताव हम दस–पाँच लोगों का नहीं है, सारा समाज ऐसा कहता है।

–सेठ जी समाज की नहीं, हम आगम की बातों पर चलते हैं। हमारा निश्चय दृढ़ है। अतः छोड़िए इस विषय को।

–नहीं महाराज, आप नाराज न हों। हम लोग चाहते हैं कि पहले आप उन्हें वर्णी या क्षुल्लक न बनाएँ, तो सीधा ऐलक बना दीजिए, परन्तु अभी मुनि न बनाइए।

सेठ जी की भाषा पर करुणा हो आई महाराज जी को। वे उन समस्त श्रद्धालुओं को समझाने की दृष्टि से प्रवचन की रौ में बोल पड़े–

कोई साधक, कोई जिज्ञासु मेरी या आपकी इच्छा से वर्णी/क्षुल्लक/ऐलक/ मुनि बने यह कैसे संभव है? सुनिए सेठ वृंद, सुनिए, कोई भी तपसी मुनि 'बनता' नहीं, 'हो' जाता है। मैं उसे मुनि बना नहीं रहा, वह मुनि हो रहा है, मुनि अवस्था धारण कर रहा है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। आपका कहना एक तो मैं मान नहीं सकता, मान भी जाऊँ, तो वह आपकी बात मानने बाध्य नहीं किया जा सकता। सोचे, कोई तपसी अपना तप अपनी ही इच्छा से करेगा। उसे बाह्य तत्त्व पर रुकने सोचने विवश नहीं किया जा सकता। यदि उसके भीतर मुनि–अवस्था धारण करने का दृढ़ संकल्प है तो मैं ही क्या, सारा देश इसे नहीं रोक सकता। वह अपनी साधना के बल पर देश के किसी भी मंदिर में मुनि–अवस्था धारण करने को स्वतंत्र है, फिर मैं या आप उसके बाधक क्यों बने?

–सोच लीजिए महाराज।

–क्या सोचना है मुझे? आप लोग ऐसी बातें कर विधान में विघ्न प्रस्तुत कर रहे हैं। यह सब जो आप कह रहे हैं, तनिक भी उचित नहीं है।

–पात्र की मजबूती तो देख लीजिए!

–देख ली मैंने। है वह मजबूत। तपस्वी के संकल्पों की तरह वह

समूचा पात्र मजबूत है, उसमें कोई कसर शेष नहीं है।

–मगर अभी आपके पास आए, सुनते हैं, सिर्फ ग्यारह माह ही हुए हैं, कुछ समय तो और दीजिए। ताड़ना–प्रताड़ना, परीक्षण–अवलोकन भी तो आवश्यक है।

–वह सब कर चुका हूँ। वह पुष्प सा दिखने वाला सुकुमार युवक भीतर से वज्र सा कड़ा और निजाश्रित है। उसे कोमल न समझो। अब तो कोमलता उसके किसी हिस्से में नहीं रही। वह कंटक सा कड़ा हो गया है भेदने के लिए, धर्म में...चरित्र में... तप में।

अपनी सी कहकर हार गए श्रेष्ठि जी। पगड़ी के नीचे पसीना हो आया। फिर भी दीक्षा कर्म को अपनी और समाज की स्पष्ट सम्मति न दी और अधखिले से चेहरे लेकर उठ गए महाराज जी के सामने से लस्त–पस्त। खिन्न–खिन्न। बिफरे–बिफरे। थकित अशांत लौट आए निज गृहों निवासों को, कोठियों–महलों को जहाँ सुख थे, स्वर्ण था, सुखाद्य था, सुनाद्य था, संगीत था, सुगीत था, सुविधा थी, सुमुखि थी, थे नहीं तो तप त्याग संयम। न था आकिंचन्य का सु–भाव। न था तपसी–भाव।

❑ ❑ ❑

परिवार की मनोदशा :

दरवाजे पर आहट सुनकर महावीर प्रसाद जी आगे बढ़े, देखते हैं तार आया है। वे कर्मचारी से तार लेकर पढ़ते है। चकित। माता–पिताजी को बतलाते हैं–३० जून को विद्याधर की मुनि दीक्षा होने वाली है।

बोले पिता –कहाँ अजमेर में? ज्ञानसागरजी के पास?

–जी हाँ।

–क्षण भर को पिता स्तब्ध रह गए। उनका वह सोचना कि पंचमकाल में कौन युवक मुनि बनता है, निरर्थक दिखने लगा। उन्हें अपने द्वारा कहे गये शब्द झूठे लगने लगे–ऐसा कौन आचार्य है जो इतनी छोटी उम्र के युवक को महाव्रती बना दे?

तार सुनकर पिताजी चकित थे, वे सिर झुकाए रहे। मौन। यही हाल

माँ का था, कुछ न बोली, बस आँखों के रास्ते लुढ़का दिए दो रत्न।

सारे घर का वातावरण कुछ विचित्र सा हो गया उस दिन। ग्रामीणों को भी पता चल गया–विद्या को मुनि–दीक्षा मिलने वाली है। उन्होंने पूछना शुरू कर दिया मल्लप्पाजी के परिवार से। परिवार का सदस्य गाँव में कहीं किसी भी जगह दिख जाता तो सामने वाला अवश्य पूछ बैठता–हमने सुना विद्या मुनि हो रहा है? उत्तर में आँखें झुक जाती–प्रेम से। शब्दों की जरूरत ही न पड़ती।

अजमेर पहुँचने के लिए घर का कोई सदस्य न तो निर्णय ले पा रहा था, न दे पा रहा था। सब का ध्यान मल्लप्पाजी की स्वीकृति पर था। वे शान्त रह गए थे। किसी से कुछ न कह रहे थे। तब बड़े भाईसाब का बोध जागा–मैं बड़ा हूँ, यदि माता–पिता नहीं पहुँचते तो न सही, मुझे अजमेर समय पर पहुँचना चाहिए।

तीव्र गर्मी, ऊपर से बाहर जाने की चिन्ता, झुलसा–झुलसा दे रही थी महावीर बाबू को। फसलें खेतों से खलियान होती हुई घरों पर और सेठों की दुकानों पर पहुँच चुकी थी, मगर सेठों की तिजोरी से उनका मूल्य अभी मल्लप्पाजी को उपलब्ध नहीं हुआ था। उपलब्ध करने की कोई जल्दी भी नहीं थी, जैसा हर साल होता था, विद्या की दीक्षा के कारण अजमेर जाने की बात तो अचानक ही सामने आई थी। दीक्षा को कुछ दिन ही शेष रह गए थे।

महावीर बाबू घर के हालातों से परिचित थे। वे अनाज खरीद कर रख लेने वाले सेठों–साहूकारों/महाजनों का हाल भी जानते थे, जो केवल अपनी सुविधा से फसलों का रुपया किसानों के घर पहुँचाते थे। महावीर बाबू को अजमेर चल देने के पूर्व सेठों–महाजनों के दरवाजे जाने और एक के बजाय दो चक्कर लगाने का समय नहीं था। अतः उन्होंने अपना रेडियो एक परिचित को बेच दिया और उपलब्ध राशि लेकर निकल पड़े अजमेर को। ममत्व की पराकाष्ठा सजीव हो उठी उस दिन।

❑ ❑ ❑

धर्म क्षेत्र का बन्ना :

दीक्षा से एक दिन पूर्व विद्याधर को विशेष विधि से आहार लेना था। कहें ब्रह्मचारी के रूप में किन्तु मुनि की तरह खड़े होकर, करपात्री बनना था। इस आहार के समय अत्यधिक जन-समुदाय हो गया था।

समय पर वे चौकी पर खड़े हो गए। श्रावकों को वही सुख, पुण्य, यश प्राप्त होता लगा जो एक मुनि को आहार देने से होता है।

वातावरण आहार-दान के तेज से अति उत्साहित हो पड़ा था।

स्वागत नूतन मुनि, स्वागत :

आषाढ़ सुदी ५ वि.सं. २०२५, तदनुसार ३० जून, १९६८ का दिन। शहर अजमेर। स्थान सोनी जी की नसियां। सूर्य की प्रथम किरण नृत्य कर रही है। अभी-अभी बाल अरुण ने नेत्र खोले हैं। मठ, मढ़िया, मंदिर, नसिया, चैत्यालय मुस्का रहे हैं। उनके गर्भ से गूँजती पीतल के घंटों की आवाजें कोई संदेश बार-बार दोहरा रही हैं। देवालयों के बाहरी तरफ. कहीं सिंहपौर के समीप श्याम-पट्ट पर खड़िया से लिखा गया समाचार आज भी चमक रहा है, जिसे कल सारा नगर पढ़ चुका था, उसे आज फिर से लोग पढ़ रहे हैं। कुछ स्थानों पर हार्डबोर्ड पर लिख कर टांगा गया है वही समाचार। नगर के समस्त दैनिकपत्रों ने समाचार छापकर अपना विनम्र-प्रणाम ज्ञापित किया है योगियों के चरणों में। कुछ प्रमुख अखबार ब्रह्मचारी विद्याधर का चित्र भी छाप पाने में सफल हो गये हैं। अनपढ़ों से लेकर पढ़े-लिखे तक, समाचार सुन-पढ़ कर चले आ रहे हैं नसियां के प्रांगण में। धनिक आ रहे हैं। मनीषी आ रहे है। हर खास आ रहा है, हर आम आ रहा है। कर्मचारी-अधिकारी एक साथ आ रहे हैं। परिवारों के झुण्ड के झुण्ड समाते जा रहे हैं पाण्डालों में। नारियों का उत्साह देखने लायक है, वे अपनी अति बूढ़ी सासों तक को साथ में लाई हैं। बच्चों का तो जमघट हो गया है। सभी के कान माइक से आती आवाजों पर बार-बार चले जाते हैं। पूर्व घोषणा के अनुसार आज परम पूज्य गुरु श्री ज्ञानसागरजी महाराज अपने परम मेधावी, परम-तपस्वी शिष्य, युवा योगी, ब्रह्मचारी श्री विद्याधरजी

को जैनेश्वरी–दीक्षा प्रदान करेंगे, बोलिए–''गुरु ज्ञानसागर महाराज की...जय। बोलिए–युवा तपस्वी ब्रह्मचारी विद्याधर की...जय।''

घोषणा से कानों को वह सुख मिल रहा था जो कुण्डल पहनने पर भी नहीं मिलता। जय घोषों से आकाश क्षेत्र भर रहा था। लोग युवा तपस्वी की एक झलक देखने को बेचैन थे। वह तपस्वी जिसकी चार अंगुल की लंगोटी है। वह तपस्वी जो कुछ समय बाद लंगोटी भी फेंक देगा और हो जायेगा इतना विशाल कि संसार के कोई वस्त्र उसके माप के न रह जाएँगे। हो जायेगा इतना विराट कि आकाश बनेगा उसका एकमात्र उढ़ावन, पृथ्वी हो जाएगी एक मात्र बिछावन। हर दिशा में वह एकाकार हो जावेगा, हर दिशा उससे प्रारम्भ होगी। धारण कर लेगा दिगम्बरत्व। हो जायेगा वह दिगम्बर।

पाण्डाल की सीमाएँ होती हैं। आदमियों का तांता लगा है, पाण्डाल तक पहुँच ही नहीं पा रहे। वह पहले ही धरती माँ की गोद की तरह भरकर खिल उठा है। सम्पूर्ण नगर जो उमड़ पड़ा है। नसिया का विशाल भू–क्षेत्र नर–मूण्डों से पट गया है। हर गली, दहलान, छत, पर नर–नारी कुछ पहले से आकर खड़े हो गए हैं। सबकी आँखें पाण्डाल में बनाए गए विशाल मंच पर केन्द्रित हो गई हैं, जहाँ कुछ ही समय बाद गुरु–शिष्य पहुँचने वाले हैं। वहाँ का भू–भाग दिख रहा था जनमेदिनी सा। श्री भागचंद सोनी माइक पर आते हैं, जन मानस की बुदबुदाहट शांत हो पड़ती है, वे घोषणा करते हैं–कुछ क्षणों बाद वयोवृद्ध मुनि श्री ज्ञानसागरजी महाराज उपस्थित हो रहे हैं। आप लोग कृपया शांत हो जावें।

सोनी जी की नसियां के प्रांगण में भगवान् महावीर के समवसरण जैसा दृश्य बन गया है। मंच लम्बा चौड़ा है, ऊँचा है। मंच के सामने जन समुदाय है। जन समुदाय के समक्ष मंच पर एक ऊँचे सिंहासन पर गुरुवर श्री ज्ञानसागर विराजित हैं, साथ ही क्षुल्लक श्री सन्मतिसागरजी, क्षुल्लक संभवसागरजी, क्षुल्लक श्री सुखसागरजी एवं संघस्थ अन्य ब्रह्मचारी भी आसीन हैं।

उनसे कुछ ही दूरी पर ब्र० विद्याधर बैठे हैं। समीप ही शहर के श्रेष्ठि विद्वान्, गुणीजन बैठे हैं। सर सेठ भागचंद सोनी, प्राचार्य निहालचंद जैन, श्रीमूलचंद लुहाड़िया, श्री दीपचंद पाटनी एवं श्री कजौड़ीमल सरावगी को दूर से ही पहचाना जा सकता है।

मंच की गौरव महिमा से एक नाम और जुड़ा है, ब्र० विद्याधर के बड़े भाई बाबू महावीर प्रसाद जी एवं अन्य संबंधी श्री बुल्लूजी बदनकाय भी उपस्थित हैं। ब्र० विद्याधर की लम्बी-लम्बी काली चमकती दाढ़ी मनोहर दिख रही है। सिर पर लम्बे काले काले घुंघराले बाल शिशुओं की झालर की तरह हवा का साथ दे रहे हैं।

समाज के कर्णधारों ने उन्हें चक्रवर्ती की तरह सजा दिया है। देह पर बेशकीमती राजसी पोशाक। सिर पर रत्न जड़ित स्वर्णिम आभा वाला मुकुट। उस समय के अनुसार मुकुट मात्र की कीमत लक्षाधिक रुपये थी। चेहरे पर भव्य शृंगार। पूर्णरूपेण युवा सम्राट्।

मुनि से पूर्व, बने राजकुँवर :

तीन दिन, रोज-रोज जुलूस निकालकर धर्म प्रचार किया गया था। युवा सम्राट् उत्तुंग गज पर आरूढ़ होते थे नित्य। सजा हुआ हाथी अपनी गजोचित चाल से झूमता हुआ चलता। बैंड, शहनाई और घंटे-घंटियों का नाद कानों को अच्छा लगता था।

विद्याधर मुस्का रहे थे हाथी पर बैठे-बैठे। वे हाथी पर बैठने के उपलक्ष्य में नहीं, राजसी पोशाक धारण करने के कारण नहीं, जुलूस में महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व बन जाने के सबब से भी नहीं, वे सत्य को समक्ष देखकर मुस्का रहे थे। भगवान् महावीर ने इसी तरह राज-पाट को छोड़कर शांतिघाट की राह पकड़ी थी। महावीर ने वह वह छोड़ा था, जो उनका था। यहाँ तो सब कुछ उठाया हुआ है, इसे छोड़ने में प्रसन्नता न होगी तो क्या होगा?

वे परिग्रह से लदकर अपरिग्रह पर विहंस रहे थे। वे संसार को छोड़, सार की ओर बढ़ने के लिए मुस्कुरा रहे थे। श्रावकगण उनकी तुलना

राजकुमार वर्धमान से कर रहे थे। तो कोई किसी सम्राट् से। जबकि उन्हें अपना स्वरूप सम्राट् तुल्य नहीं दीख रहा था। उन्हें दिख रहा था परिव्राजक महावीर का सौम्य मुखमंडल। दिगम्बर महावीर का देहोजाला। देहाभा।

दो आँखें खुली रह गई हैं, वे हैं श्री महावीरप्रसाद की। वे देख रही हैं, एक विशाल जुलूस अजमेर के राजपथ पर होकर चल रहा है। सारा अजमेर सजाया गया है। हर गली में तोरण द्वार, हर चौरस्ते पर बंदनवार। झण्डे और झण्डियों से नगर का श्रृंगार किया गया था, बैंड बाजों और शहनाई वालों के पीछे-पीछे २४ हाथी झूमते हुए चल रहे थे, पच्चीसवें हाथी को कुछ अधिक ही सजाया गया था, इन्द्र के ऐरावत की नाँई। हाथी पर विराजित है राजकुमार वर्धमान। हाँ वर्धमान जैसे दिखने वाले भव्य प्राण-राजकुमार विद्याधर। उन्हें घेर कर चल रहे हैं- उत्तर भारत के तमाम गणमान्य नागरिक, श्रेष्ठी और मनीषी। उनके पीछे सैकड़ों नारियाँ चल रही हैं देवियों की तरह। कुछ मुकुट बांधकर चल रही हैं। कुछ मंगल कलश लेकर चल रही हैं। उनके पीछे है सहस्रों श्रावक। बच्चे-युवक अपने बड़ों के साथ संग मैत्री कर चल रहे हैं। फिर भी साथ छूट जाता है। जो जहाँ, वह वहीं उस दिन विद्याधर के साथ था। इससे बड़ा साथ क्या हो सकता था उन्हें। किसी को कोई चिन्ता नहीं थी।

जुलूस के ओर-छोर देखते चल रहे महावीर प्रसाद उसे आँखों से पी जाते हैं। उन्हें याद आता है वह क्षण जब विद्याधर १५ के रहे होंगे। सदलगा का वह घर जहाँ किशोर विद्याधर अपने कक्ष में बैठे जोर-शोर से बारह भावना पढ़ रहे हैं, लोक-भावना का पद कुछ धीरे से पढ़ते हैं, मगर स्वर साधकर-

मोह कर्म को नाश मेट कर सब जग की आशा।
निज पद में थिर होय, लोक के शीश करो वासा॥

महावीर प्रसाद जी दरवाजे के पास खड़े चुपचाप सुन रहे हैं। पढ़ते-पढ़ते विद्याधर आगे स्वयमेव बुदबुदाने लगते हैं। संसार में क्या रखा है? एक न एक दिन इसे छोड़ना ही होगा। अतः मैं स्वेच्छा से छोड़कर जंगल

जाऊँगा। साधु बनूँगा। महावीर प्रसाद पूरी पंक्ति सुनकर चकित होते हैं। फिर कमरे में प्रवेश कर अनुज की हँसी उड़ाते हैं– ओ हो, तो भाईसाब साधु बनेंगे? अरे भैया क्या रखा है साधु बनने में? मजे से घर में रहो, आनन्द से भोजन करो, सुख से घूमो–फिरो, मेला–ठेला देखो, बस। ठिठक गए विद्याधर। उन्हें अग्रज का सम्बोधन रुचा नहीं। मौन रह गए। उनका वह मौन तब अग्रज महावीर प्रसाद जी न समझ सके थे, पर आज अजमेर की धरती पर उस मौन को पर्त दर पर्त खुलते देख रहे थे। प्रकृति उन्हें दिखा रही थी। आज वे मौन थे, हतप्रभ। किशोरवय में भविष्यवाणी करने वाले विद्याधर समय के ऐरावत पर बैठकर साधु–पथ पर जा रहे थे और प्रौढ़ चिन्तन के अधिकारी अग्रज मौन होकर उन्हें देख रहे थे–काश किशोर विद्याधर की बातों का मर्म तभी समझ लिया होता!

महावीरप्रसाद की आँखें निर्निमेष देखती रहती हैं एक प्यारी छवि। एक प्यारा जुलूस। एक प्यारा दृश्य। दोपहर की सामायिक करके गुरु शिष्य नसियां जी के मंदिर में देवदर्शन कर और मांगलिक कार्य की सफलता की कामना कर, पाण्डाल में पहुँच जाते है।

मुनि–दीक्षा :

दीक्षा समारोह प्रारम्भ होता है। ब्र॰ विद्याधर खड़े होकर गुरुवर की वंदना करते हैं, हाथ जोड़कर दीक्षा प्रदान कर देने की प्रार्थना करते हैं। गुरुवर का आदेश पाकर विद्याधर वैराग्यमयी, सारगर्भित वचनों से जनता को उद्‌बोधन देते हैं, तदुपरांत विद्याधर ने हवा में उड़ने वाले केशों का लुंचन करना प्रारम्भ कर दिया। अपनी मुष्ठिका में सिर से इतने सारे बाल खींच ले जाते हैं कि देखने वाले आह भर पड़ते हैं। फिर दूसरी मुष्ठिका। तीसरी सिर के बाल निकालते हुए कुछ स्थानों से रक्त झिर आया है। विद्याधर के चेहरे पर आनंद खेल रहा है। हाथ आ गए दाढ़ी पर। दाढ़ी की खिंचाई और अधिक कष्टकारी होती है। वे दाढ़ी के बाल भी उसी नैर्मम्य से खींचते हैं। हाथ चलता जाता है, बाल निकलते जाते हैं, पूरा चेहरा लहूलुहान हो गया है। श्रावक सफेद वस्त्र ले उनकी तरफ दौड़ पड़ते हैं। वे अपने

चेहरे को छूने नहीं देते। बाल खींचते जाते हैं। रक्त बहता जा रहा है। विद्याधर जहाँ के तहाँ/ अविचलित खुश हैं। आनन्दमय हैं। लोग शुद्ध भस्म (राख) लगाने प्रवृत्त हैं।

केशलुंचन पूर्ण होते ही पंडितों-श्रावकों और अपार जनसमूह के समक्ष गुरु ज्ञानसागर संस्कारित कर उन्हें दीक्षा प्रदान करते हैं। विद्याधर वस्त्र छोड़ते हैं। तभी एक आश्चर्यकारी घटना घटती है। राजस्थान की जून माह की गरमी और खचाखच भरे पंडाल में २०-२५ हजार नर-नारी। समूचे प्रक्षेत्र पर तेज उमस हावी थी। लोग पसीने से नहा रहे थे। वातावरण ही जैसे भट्टी हो गया हो। जैसे ही विद्याधर ने वस्त्र छोड़े, पता नहीं कैसे, कहाँ से बादल आ गए और पानी को भीनी-भीनी बौछार होने लगी हवाएँ ठण्डी हो पड़ीं। वातास शांति एवं ठण्डक देने लगा। ऐसा लगा कि प्रकृति साक्षात् गोम्मटेश्वरी दिगम्बर मुद्रा का महामस्तकाभिषेक कर रही हो। अथवा देवों सहित इन्द्र ने ही आकर प्रथम अभिषेक का लाभ लिया हो। कुछ समय बाद पानी रुक गया। सूर्य ने पुनः किरणें बिखेर दीं। सभी दंग रह गये, कहने लगे यह तो महान् पुण्यशाली विद्याधर जी की ही महिमा है। सभी अपने-अपने मन गढंत भाव लगाकर विद्याधर के पुण्य का बखान कर रहे थे। वहीं छोटे बालक कह रहे थे विद्याधर ने जैसे ही धोती खोली वैसे ही इन्द्र का आसन कांप गया सो उसने खुशी जताने के लिये नाच नाचकर यह वर्षा की है। ज्ञानसागरजी पिच्छिका कमण्डलु सौंपते हुए और मुनिपद से संबंधित निर्देश देते हैं। दीक्षा संपन्न।

ब्रह्मचारी विद्याधर देखते ही देखते, हो गए पूज्य मुनि १०८ श्री विद्यासागर। समूह शांत है। विद्या के दर्शन में मग्न। अपार जन्मेदनी की लालसापूर्ण हुई है। सब की आँखों में विद्याधर बालयति महावीर की तरह समाते जा रहे हैं। कोई आँखें हटाने तैयार नहीं है, एक टक देख रहे हैं। सदलगा की धूल बन गई सेहरा का फूल।

मंच के पार्श्व में खड़े रहते हैं विद्याधर के वे भक्त जो रुपये पच्चीस हजार की राशि दान कर दीक्षा-संस्कार में माता-पिता का महान् पद प्राप्त

कर सके थे। वे उस दिन नगर अजमेर का गौरव बन गए थे। श्री हुकुमचंद जी लुहाड़िया और उनकी धर्म पत्नी श्रीमती जतन कँवर जी ने वह यश प्राप्त किया था, जो सदलगा स्थित माता-पिता बीस वर्ष पूर्व ही ले चुके थे। उसी दिन अजमेर के इस धर्मज्ञ-दम्पत्ति ने मुनिवर ज्ञानसागरजी से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत प्राप्त कर अपना भव सफल कर लिया।

तब तक एक सज्जन माइक पर अनुरोध करते हैं मुनिवर ज्ञानसागरजी से। वे अनुरोध स्वीकार कर प्रवचन प्रारम्भ करते हैं। सब ज्ञान की वाणी में लीन हो जाते हैं। ज्ञानसागर के रहस्य को समझने का प्रयास करते हैं।

प्रथम आहार :

आज आहार के लिए एक नहीं दो मुनि निकले हैं नसियां जी से। आगे हैं मुनिवर ज्ञानसागरजी पीछे हैं विद्यासागरजी। अन्य दिनों की तुलना में आज चौके ज्यादा लगे हैं। घरों के समक्ष जनसमुदाय भी अधिक है। सभी के चेहरे पर कौतूहल है-देखें, युवा मुनि विद्यासागर की विधि कहाँ बनती है।

पहले चौका में ही महाराज विद्यासागर की विधि बन जाती है। भाग्य सोनी जी का चमका-चमका लगता है। लोग उन्हें धन्य-धन्य कर रहे हैं, वे सपरिवार विनयपूर्वक, विधिपूर्वक युवा योगी को आहार दान दे रहे हैं। लोग उनके भाग्य को सराह रहे हैं। श्रेष्ठ हुए सोनी जी जो शुरू दिन ही सुनहला समय पा गए।

नगर वि-नगर के फोटोग्राफरों पर एक अलग रंग चढ़ गया था जिसके कारण कई दिनों तक मासूम नवीन योगी मुनि विद्यासागर को कैमरे वाले मच्छरों के चमकीले डंक सहने पड़े। वे कैमरे से निकलती शिखा से छेदते रहे और अरुण मुनि विद्यासागर समता भाव से देखते/सहते/बचते रहे।

❑ ❑ ❑

वापस हो गये बड़े-भैया :

बाबू महावीर प्रसाद स्वगृह को लौट पड़ते हैं। भाई विद्याधर को

अजमेर में छोड़ते हैं, मुनि विद्यासागर को हृदय में समा लेते हैं और चल देते हैं सदलगा, जहाँ का हर प्राण विद्याधर की कहानी सुनने लालायित है। जहाँ का हर मस्तिष्क विद्या की चर्चा के लिए प्रतीक्षातुर है।

अनन्तनाथ और शांतिनाथ शाला से लौट रहे हैं। वे देखते हैं–उनके दरवाजे पर भीड़ लगी हुई है। किसी अशुभ प्रसंग की कल्पना से भयभीत हो जाते हैं। दोनों दौड़ पड़ते हैं। तब तक उन्हें अजमेर से लौटे अग्रज महावीर दिख जाते हैं। दोनों बालकों का अदृश्य विषाद जाता रहता है और हर्षातिरेक से उछलने लगते हैं। उन्हें विश्वास हो जाता है कि महावीर विद्या को वापस ले आए हैं। मगर अगले ही क्षण उनका मीठा–मीठा विश्वास ध्वस्त हो जाता है, जब देखते हैं कि बड़े भाईसाब विद्या को नहीं, उनकी तस्वीर को लाए हैं। दोनों अनुज ठगे से रह जाते हैं। फिर भीड़ में शामिल हो चित्र देखने लगते हैं।

महावीर बाबू वह सब कुछ वर्णित करते हैं जो उन्होंने अजमेर में देखा था। पिता, माता, भाई और बहिनें साँस साधे महावीर की बातें सुन रहे हैं। सुनते चले जा रहे हैं। महावीर बतलाते चले जा रहे हैं। दीक्षा महोत्सव के कुछ चित्र निकालते हैं बैग से और बतलाते हैं केशलोंच का चित्र है यह। यह वस्त्र त्यागते समय का है। यह ज्ञानसागरजी का है–दीक्षा दे रहे हैं।

चित्र देखते हुए, महावीर बाबू को सुनते हुए, सभी की आँखों से अश्रुधारा बहती रहती है। नासाएं सिर्र–सिर्र हो रही हैं। रूमाल कभी आँखों पर तो कभी नासिका पर घूमते हैं। चर्चा चल रही है।

सम्पूर्ण ग्रामवासियों को पता चल गया महावीर के लौटने का। नागरिकों के झुण्ड के झुण्ड चले आ रहे हैं महावीर के निवास पर। घर भर गया है लोगों से। घर घिर गया है श्रोताओं से। विद्या के चहेतों से। महावीर सब को बता रहे हैं। प्रश्नों के उत्तर दे रहे हैं। चर्चा का क्रम नहीं टूटता। एक दिन, दो दिन। पन्द्रह दिन बीत गए। घर पर रोज–रोज भीड़ जमती। महावीर रोज–रोज संबोधित करते हैं।

मल्लप्पाजी और श्रीमती जी सारे नगर में पूजित हो गए। जो व्यक्ति चर्चा सुनकर लौटने लगता, अपना सिर उनके चरणों पर धर देता। विद्या का पूरा घर मंदिर की तरह वंदनीय हो गया। नागरिकों के लिए। वहाँ रास्ते से जो भी निकलता उसके हाथ जुड़ जाते विद्या के निवास को देखकर।

❑ ❑ ❑

चले मल्लप्पाजी दर्शनार्थ :

अभी सत्रह दिन ही बीते थे कि मल्लप्पाजी सपरिवार तैयार हो गये अजमेर जाने। अपने युवा मुनि के चरणों में अपनी पूजा के पुष्प चढ़ाने। कहने लगे श्री जी से–कुछ रख लेना उनके चरणों में चढ़ाने। श्री जी ने सुनकर जी कह दिया। अपने निर्णय को स्पष्ट नहीं किया कि क्या रख रही हैं। परिवार के साथ उनका वह सेवक भी था, जिसका नाम मारुति था, विद्या के बालकाल का सखा। वह जैन न था तो क्या, जैनों के साथ बचपन से रहकर जैनत्व का बोध हो चुका था। वह जैनत्व जानता था और जैनत्व स्वीकारे हुए भी था। मल्लप्पाजी के परिवार के किसी भी सदस्य से कम नहीं था वह। वे सब चल पड़े।

दीर्घ यात्रा पूरी हो गई। मल्लप्पाजी सपरिवार अजमेर पहुँच गये। आचार्यश्री के दर्शन। विद्यासागर के दर्शन। दर्शनों से मन का पागलपन संभलता गया, बातें न हो सकी, संकेत न किए जा सके, किए सिर्फ दर्शन। दर्शन से रोज आँखें तृप्त कर लेते। मन भर लेते।

मल्लप्पाजी ने ज्ञानसागर महाराज को सम्पूर्ण परिवार का परिचय दिया–यह विद्या की माँ है, श्रीमंती जी, अब नहीं रोती। यह विद्या से छोटा भाई है–अनन्तनाथ, आजकल इसकी चंचलता समाप्त हो गई है। यह उससे छोटा है–शांतिनाथ पहले से ही शांत स्वभाव था, अब तो मौन सा ले रखा है। यह शान्ता है, बीस दिन से पीछे पड़ी थी–अजमेर आने के लिए अब दर्शन करने में हिचकिचाती है। यह सुवर्णा है, कहती है भैया बोलते नहीं। और यह...मारुति है, विद्या का मित्र है बचपन का, अपने यहाँ ही कार्य करता है। अचानक बोल पड़े ज्ञानसागर–अरे मारुति तुम कैसे मित्र

हो, मुस्काए ज्ञानसागर फिर आगे बोले, देखो, तुम्हारा एक मित्र मुनि बन गया और तुम गृह जंजाल में फँसकर रह गए।

मारुति विद्यासागर को देखते हुए अपने ही अतीत की एक खंदक में खो गये थे, जहाँ तम्बाखू का खेत लहलहा रहा था खेत में मारुति खड़ा था और मेढ़ पर विद्याधर। कच्ची उम्र का वह दृश्य जहाँ मारुति ने विद्या को पौधों से बातें करते देखा था। वह एक ही प्रश्न के उत्तर को खोज रहा था डूबा-डूबा। तम्बाखू का कीड़ा आत्मा की पीड़ा कैसे जान सका, यह बात मेरी समझ में क्यों नहीं आती थी?

मुनिवर ज्ञानसागर के प्रश्न ने मारुति को विचार सरोवर की हिलोरों से उठाकर उत्तरों के घाट पर रख दिया, सो अचकचा कर बोला मारुति– मैं...मैं...अज्ञानी हूँ महाराज, हाथ जोड़ लिए मारुति ने, मैं कुछ ज्यादा जानता नहीं महाराज, फिर भी एक प्रार्थना है– मुझे ... मुझे भी आप दीक्षा प्रदान कर दीजिए, मैं यहीं, आपके चरणों में रहने तैयार हूँ, मैं सब कुछ वैसा-वैसा करूँगा जैसा विद्या भैया करेंगे।

छि-छि ... तुम अब भी विद्या भैया कह रहे हो, अरे अब वे भैया नहीं, मुनि विद्यासागर हैं।

-जी महाराज भूल हो गई। मैं विद्यासागर ही कहूँगा, मुझे यहीं पर शरण दे दीजिए।

हँसने लगे महाराज। पारिवारिक सदस्यों के नेत्र भर आये मारुति की बातों से। तब तक ज्ञानसागरजी बोल पड़े-अच्छा ऐसा करो, ब्रह्मचर्यव्रत लेकर घर में रहो। करबद्ध मारुति का सिर झुक गया पुनः ज्ञानसागर के चरणों पर, बोला, महाराज ठीक है, ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान कीजिए। ''ठीक है। बतलाएंगे।'' मिल गया संकेत मारुति को। मिल गया संकेत सम्पूर्ण परिवार को। पूज्य ज्ञानसागरजी ने आज्ञा दी विद्यासागरजी को, श्री मल्लप्पाजी के परिवार से बात करने की। विद्यासागरजी ने नेत्र उठाए, दृष्टि टिका दी-श्रीमंती जी के मुख मण्डल पर। सदा माँ कहने वाले व्यक्ति ने इस बार केवल देखा भर था, माँ का रोम-रोम पुलकित हो उठा था। उन्हें

क्षणभर को लगा कि विद्या बेटे को गले लगा लें। पर माँ साधारण महिला नहीं थीं, वे थीं एक महामुनि की माँ, अतः बोली कुछ न, बस देखती रहीं हठीले–लाल को। आँखों की सच्चाई ज्ञापित हो कि पहले ही झुक गई मुनि विद्यासागर के चरणों में। बोली सिर्फ–नमोऽस्तु। सब पर कृपादृष्टि करने वाला हाथ उठा विद्यासागरजी का। मुनि का आशीष मिला श्राविका को।

धर्म की उस स्थिति की बलिहारी है, जहाँ बेटा का हाथ इतना महान् हो जाता है कि वह माँ को भी आशीष देने की पात्रता धारण कर लेता है।

श्रद्धा की भाषा :

तब तक पूज्य ज्ञानसागरजी ने अनन्त की ओर देखा, फिर बोले–तू भी बात कर ले। गुरुवर का आदेश पा अनन्तनाथ प्रसन्न हो गए। पर इतने छोटे थे कि प्रश्न करने की हिम्मत न जुटा सके। हाथ जोड़कर खड़े हो गए विद्यासागर के समक्ष। जीभ साथ न दे रही थी, ऐसे समय सदा से धोखा देती रही है, सो उस रोज भी उनके समक्ष धोखा दे गई। न निकले कोई शब्द।

श्रद्धा को, कहते हैं, शब्दों की जरूरत ही नहीं पड़ती। न निकले शब्द तो क्या अनन्तनाथ का कार्य रुक गया? नहीं रुका। जहाँ जिह्वा कार्य करने में लजियाती है, वहाँ आँखें उस कार्य को अपने हाथ में ले लेती हैं। अनन्तनाथ के शब्द आँखों के रास्ते से जल बिन्दु बनकर निकलने लगे। गालों की स्लेट पर आँखों से निर्झरित स्याही से–श्रद्धा गीत कोई लिखने लगा। गाल पर बह आए आँसू जैसे पूछ रहे हो–जीवन भर के लिए आपने भाई का नाता तोड़ लिया? उस दिन शब्द विदा लेकर किसी अदीठ दिशा में खो गए थे। अनन्तनाथ सोचते हुए भी यह नहीं पूछ सके कि यह बाना क्यों अपनाया? क्या था इसके पार्श्व में?

सदलगा के प्रेमोन्मुख लोग रोज–रोज मुनियों के लिए चौका लगाते थे, जब तब उन्हें पुण्य भी मिलता था आहार–दान का।

एक दिन मल्लप्पाजी के चौके में...हाँ श्री जी के चौके में ... हाँ अनन्तनाथ के चौके में...हाँ शान्तिनाथ के चौके में...सम्पन्न हुए निरन्तराय–

आहार मुनि विद्यासागर के। जन भर नहीं, तन-मन-जीवन धन्य हो गया उन सरल-श्रावकों का। आहारोपरान्त चलने लगे मुनिवर तो कई सिर नब गए चरणों के समक्ष। दो सिर झुके तो देर तक न उठे। देखा मुनिवर ने उनकी ओर तो अनन्त और शांति। क्या चाहते हैं आप लोग-पूछ बैठे मुनिवर। आशीर्वाद दीजिए।

मुस्का दिए मुनिवर। फिर दो सिरों के लिए दो बातें बोल दीं मन रखने के लिए। शांतिनाथ से बोले-तू शांतिसागर बनेगा। फिर बोले अनन्तनाथ से-तुम माता-पिता की सेवा करते रहो।

दोनों किशोर हँसते-मुस्काते रहे। किसी ने समय का गर्भ न अथाहा था, सो चुप रहे। कौन जानता था कि मुनिवर के आशीष-प्रभाव से देश को दो युवा मुनि मिलने वाले हैं कालान्तर में।

❑ ❑ ❑

मल्लप्पाजी सपरिवार सोनी जी की नसिया में जिन-भगवान् के दर्शनार्थ वंदनार्थ उपस्थित थे। वे नसिया का स्वर्ण श्रृंगार देख समझ रहे थे। देश के सुप्रसिद्ध श्रीमंत सेठ भागचंद सोनी द्वारा निर्मित नसिया उन्हें अच्छी लग रही थी। दक्षिण के कुछ जैनाजैन मंदिरों और मूर्तियों में ही स्वर्ण धातु का अधिक योगदान देखा था उनने, अब जो यह उत्तर की नसिया देखी तो उन्हें लगा ... सारा देश स्वर्ण-श्रृंगार के लिए एक जैसी विचार-वीथि पर है। देश-विदेश से अजमेर आने वाले यात्रीगण यह स्वर्ण मंदिर/सोने की नसिया, हाँ सोनी की नसिया अवश्य देखते हैं। उसे देखे बगैर अपनी यात्रा अपूर्ण मानते हैं।

अनन्तनाथ और शांतिनाथ अपनी बाल-सुलभ जिज्ञासा से नजर नचा रहे हैं। उन्हें भी नसियां बेजोड़ लग रही है। मंदिर जी के अन्य भाग में द्वारिका जी की रचना देखते हैं, यह भी स्वर्ण-आभा से दीप्त है। स्वर्ग की श्री यहाँ सिंचित कर दी है जैसे। तीन मंजिली रचना, लाल पत्थरों का शिल्प, ऊपर विशाल गगनचुम्बी-शिखर, शिखर पर सुडौल कलश, कलश भी सामान्य नहीं स्वर्ण निर्मित। मंदिर के साफ शुद्ध कलापूर्ण प्रांगण में

चौरासी फुट उत्तुंग मान-स्तंभ। इतना विशाल (शायद) अन्यत्र नहीं है। स्तंभ के ऊपर चार पद्मासन प्रतिमाएं स्थापित हैं तो नीचे चार खड़गासन प्रतिमाएँ सुशोभित हैं।

गरिमा मिश्रित वहाँ के सौन्दर्य को शब्दों से नहीं बांधा जा सकता, उसके लिए चाहिए एक श्रद्धापूर्ण दृष्टि, हाँ दो आँखें। इसका पूरा नाम है- बड़ा धड़ा नसियां इस महान् नगरी अजमेर का महान् मंदिर। मूल वेदी पर मूलनायक है आदिनाथ भगवान्।

इस मंदिर के अतिरिक्त अन्य मंदिरों की मूर्तियों के दर्शन भी किए मल्लप्पा परिवार ने। यहाँ भी हीरे, जवाहर और स्फटिक की चमचमाती मूर्तियों ने नयन ज्योति को आकर्षित किया। समवसरण मंदिर की छटा पृथक्।

चलते-फिरते सपना आया :

विद्यासागरजी की दीक्षा वाला मंदिर बस गया मल्लप्पा परिवार की आँखों में। श्री जी कहती है-यह बड़ा धड़ा की नसियां है, दीक्षा इधर दी गई होगी। वे हाथ से संकेत करती रहती हैं। उन्हें बड़े पुत्र महावीर की बातें याद हो आती हैं जो उन्होंने अजमेर से लौट जाने के बाद घर पर सुनाई थीं। उन्हें दीक्षा वाले स्थान पर अपना विद्या दिखने लगता है-ब्रह्मचारी भेष में क्षणभर को वह सब दिखने लगा है, जो महावीरप्रसाद ने बतलाया था, हाँ यही कि ब्रह्मचारी विद्याधर को मुनि दीक्षा दी जा रही है, चारों ओर सहस्त्रों दर्शक खड़े हैं। विद्याधर दीक्षा के कार्यक्रम में पाँच दिन से व्यस्त रहे हैं, लगातार श्नायुक दाब बढ़ता कमता रहता है, एक थकान उभर आई है उनके चेहरे पर। गर्मी का प्रभाव अलग बना है सारे माहौल पर। ऊपर से एक उपवास। दीक्षा से एक दिन पूर्व का उपवास। आहार लेने के बाद उन्हें मस्तिष्क में गर्मी चढ़ गई है, वे पसीने में डूबे हुए लौटे हैं नसियां में। उनकी ताप चढ़ी-छवि किसी से छिपती नहीं है। श्रावक जन रीठे के पानी से उनके पैरों के तलुओं का मर्दन कर रहे हैं।

श्री जी को विद्यासागर के तलुओं के मर्दन के दृश्य से राहत मिलती

है। आराम का आभास उनके चेहरे पर प्रगट हो पड़ता है। वे आगे सोचने लगती हैं– रीठा से तो बहुमूल्य सोना चाँदी की वस्तुएँ साफ की जाती हैं, आज ये चरण धोए जा रहे हैं, ये भी तो बहुमूल्य हो चुके हैं।

उन्हें क्षणभर को एक विचित्र अनुभूति होती है–सोने की नसियां में सोने की मूर्ति देखती हुई वे एक और नई बात देखने लगती हैं अपने दिवास्वप्न में–सोने के मंदिर में 'सोने जैसी छवि' के दर्शन उनके नेत्र ठीक ही कर रहे थे, वे तो बचपन से ही स्वर्ण वाली आभा के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। स्वर्ण–मंदिर में स्वर्ण–मूर्ति हो और स्वर्णिम मुनि भी हो तो?

स्वर्ण स्वर्ण स्वर्ण। सभी की आँखों में स्वर्ण का सात्विक सौन्दर्य समा गया। स्वर्णाभा लिए लौट आए सब डेरा पर।

स्वर्ण–पुष्प से पूजा और ब्रह्मचर्य व्रत :

चर्चाओं को जन्मते समय नहीं लगता। डेरा पर पहुँचने के बाद ही छिड़ गई नई चर्चा–इस स्वर्ण आभा से युक्त मुनि विद्यासागर के चरणों में क्या चढ़ाया जावे? सब के समक्ष विचार प्रश्न खड़ा था।

मल्लप्पाजी विचारते–दे ही क्या सकते हैं, हम हैं ही किस लायक? यही प्रश्न घूम रहा था श्री जी के अंतस् में। स्वर्ण मंदिर देखकर लौटी थी न, सो स्वर्णिम चरणों में, स्वर्ण ही चढ़ा देने का भाव आया, माँ श्रीजी जिसे सहेज कर लाई थी सदलगा से, वह स्वर्ण मुद्रिका निकाली उनने। देखकर मल्लप्पाजी को संतुष्टि हुई। यह वही अंगूठी थी जिसे विद्याधर बचपन में पहिन लेते थे। माता–पिता अंगूठी देख रहे हैं–उसमें प्रिय पुत्र की सुकोमल, सुन्दर और चमकदार अंगुली की झलक दिख जाती है। दोनों अवाक्। विचार क्रम नहीं छूटता–जब पुत्र अपने पास नहीं, तो उसकी प्रिय वस्तु भी क्यों रखे हम, वह भी उसी की ओर कर देनी चाहिए।

मल्लप्पाजी मुद्रा लेकर स्वर्णकार की ओर चल दिए और देखते ही देखते मुद्रा को १०८ स्वर्ण पुष्पों में परिवर्तित कराकर ले आए। गरीब होते हुए भी मारुति चुपके से, साथ में लाए हुए चाँदी के पुष्प पूजार्थ प्रस्तुत करने लगा। (तो फिर गरीब क्यों कहे?) उचित प्रसंग आने पर तीसरे दिन

मल्लप्पाजी ने महाराज श्री ज्ञानसागरजी से आज्ञा ली और सोने की नसियां में सोने की मूर्तियों की कृपा छाया में स्वर्णाधिक महत्त्वपूर्ण गुरु और शिष्य की ठाठ-बाट के साथ पूजा की और पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा के समय अर्पित कर दिये स्वर्ण रजत पुष्प दोनों के चरणों में। पूजन से सभी को आनन्द आ गया। लोग देखकर कल्पना कर रहे थे स्वर्ग की, जैसे तीर्थंकरों की पूजा कर रहे हो देवादिगण। उसी पूजन के बाद मल्लप्पाजी ने अपने घर पर संकल्पित ब्रह्मचर्य व्रत को गुरुवर ज्ञानसागर के चरणों में स्पष्ट किया और उनसे विधिवत् ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया।

सेठ भागचंद सोनी उपस्थित थे। मल्लप्पाजी का परिचय हिन्दी में प्राप्त कर सुख से भर गया उनका मानस। विद्यासागर की दीक्षा फिर मल्लप्पाजी द्वारा पूजन, फिर उन्हीं के द्वारा ब्रह्मचर्यव्रत, सेठ जी को लगा उनका नगर धन्य हो गया। वे अपने आपको और अपने वैभवशाली परिकर को कृतार्थ हुआ पा रहे थे उस क्षण। वे आत्माओं के इस संजोग पर गौरवान्वित हो रहे थे। धन्य हो रहे थे, मन ही मन। उनने सोचा भी न होगा कि वैभव के इस तल पर वैराग्य खड़ा होकर मुस्काएगा और त्याग किलकारियाँ भरेगा।

भले और भोले परिवार की वापसी :

समय का कार्य बीतना है, वह यहाँ अजमेर में भी बीत रहा था। दिन से सप्ताह की ओर। सप्ताह से माह की ओर। मल्लप्पाजी का परिवार बार-बार श्री ज्ञानसागरजी के दर्शन करता, प्रवचन सुनता एवं मुनिसंघ के लिए चौका लगाता।

अनन्तनाथ एवं शांतिनाथ तब किशोर थे। अजमेर के आकाश के नीचे उन्हें ज्ञानसागर के दर्शन और प्रवचन चाहे जब मिल जाते थे, पर छोटी वय के कारण वे अपने भीतर के उस पृष्ठ को नहीं बांच पा रहे थे, जिस पर उनके वैराग्य की कहानी लिखी गई थी जगनियन्ता के हाथों। अस्तु।

माह भर रहने का अवसर मिला पर स्थिति दोनों की वही रही 'बालपने में ज्ञान न लह्यो।' ज्ञानसागरजी ने मारुति को विधिवत् ब्रह्मचर्य

व्रत की दीक्षा प्रदान कर दी एक दिन। मारुति त्याग के सागर की एक बूँद बनकर गद्‌गद्‌ हो गये। हो गए कृतार्थ। कुछ दिनों के बाद मल्लप्पाजी परिवार सहित लौट गए सदलगा, साथ थे ब्रह्मचारी मारुति जी भी।

❑ ❑ ❑

मिष्ठसहस्त्री :

दीक्षोपरांत मुनि विद्यासागरजी अध्ययन की दिशा में और अधिक श्रमशील हो पड़े। पूज्य गुरु ज्ञानसागरजी का सान्निध्य उन्हें पल-पल पढ़ाता लगता। देखते ही देखते उन्होंने न्याय-शास्त्र जानने प्रमेयरत्नमाला, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टशती एवं अष्टसहस्त्री पूर्ण किया और सभी महान् तथा क्लिष्ट ग्रन्थ उतार डाले हृदय के आइने पर। गुरुवर उन तीक्ष्ण बुद्धि वाले शिष्य से सदा प्रसन्न रहते थे। पूर्ण संतुष्टि के बाद गुरु ज्ञानसागरजी ने समयसार पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। फिर प्रवचनसार और फिर पंचास्तिकाय। कुन्द-कुन्द के तीनों रत्नों का परिचय करा दिया गुरु ने शिष्य को। शिष्य हो गए तीन रत्नों के पारखी। नियमसार, अष्टपाहुड, मूलाचार भी उनके अध्ययन-क्षेत्र में शीघ्र आ गए और अल्प समय में ही समा गए उनके मानस में।

कुछ ही समय में विद्यासागर नाम के मुनि लोगों द्वारा 'विद्या के सागर' मनोनीत कर दिए गए। कहते भी यही-'गुरु ज्ञान का सागर है तो शिष्य विद्या का सागर क्यों न हो।'

गुरुवर ज्ञानसागरजी को अष्टसहस्त्री जैसा क्लिष्ट ग्रन्थ पढ़ाते हुए जिसने देखा है, वह कह सकता है-ज्ञानसागरजी सही में ज्ञान के सागर थे। अष्टसहस्त्री न्याय का महा अरण्य है, जिसमें विद्वान् गण घनघोर जंगल की झुरमुट में चलने में पारंगत वनराज की तरह होते हुए भी भटक जाते हैं, परन्तु ज्ञानसागरजी ८० वर्ष की उम्र में भी उसके श्लोकों-सूक्तियों को मौखिक समझाते थे। वे विद्यासागरजी से उसके अर्थ/भावार्थ/अन्वयार्थ सुना करते थे और उचित मार्गदर्शन दिया करते थे। देश के मूर्धन्य विद्वान् हंसी-हंसी में अष्टसहस्त्री को क्लिष्टसहस्त्री कहते थे, तब ज्ञानसागरजी उसे मिष्ठसहस्त्री कहकर पढ़ाते थे।

गुरु ज्ञानसागरजी :

ज्ञानसागरजी जितने उद्भट् विद्वान् थे उतने ही स्वाभिमानी थे, उनके परिचय में यहाँ कुछ बतला देना विषयानुकूल होगा-राजस्थान के राणोली ग्राम में इस महासाधु का जन्म माघमास में वि.सं. १९४८ (सन् १८९१ ई.) में हुआ था। सीकर जिला का कस्बा राणोली तब निरा देहात के रूप में पाया जाता था। पिता श्री चतुर्भुज प्रसाद छाबड़ा एवं माता श्रीमती धृतवरी/घेवरीबाई के घर, वह सौभाग्य पुष्प खिला था, जिनका परिवार सामान्य किन्तु धर्मप्रधान था। पाँच पुत्रों के मध्य ज्ञानसागरजी का स्थान द्वितीय क्रम में आता है। पुत्र के शरीर का गोरापन और लुनाई देखते हुए उसे 'भूरा' संबोधन दिया गया था माता-पिता व परिजनों द्वारा। बाद में हुए पं० भूरामलजी। कौन जानता था कि बालक भूरामल जगत् का पूरा-मल नष्ट करने के सूत्र देगा?

उन्हें तो बचपन से ही नैर्धन्य के थपेड़े सहने पड़े थे। फिर सहना पड़ा पितृ वियोग। ग्राम में उपलब्ध प्रारंभिक शिक्षा के पश्चात् उन्हें बनारस भेजा गया। जहाँ उन्होंने संस्कृत और जैन-सिद्धान्त का तलस्पर्शी अध्ययन किया और निश्चित समय पर शास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। कहते हैं वे बड़े स्वाभिमानी थे, जीवकोपार्जन हेतु कुछ न कुछ करते रहते थे। कुछ दिन बनारस की सड़कों-हाटों में गमछे तक बेचे, मगर वाराणसी का स्नातक बन कर ही चैन लिया। छात्र भूरामल की अध्ययन के प्रति लगनशीलता देखकर, स्याद्वाद-महाविद्यालय-बनारस के अधिष्ठाता (पदाधिकारी) प्रसन्न होकर कहते कि भूरामलजी आप यह गमछे वगैरह बेचने का कार्य छोड़ दें, आपकी भोजन-संबंधी एवं अन्य व्यवस्था संस्था द्वारा कर दी जायेगी, तब वह मुस्कराकर कह देते कि आप ही ने तो सिखाया है ''सुखार्थी चेत् कुतो विद्या विद्यार्थी चेत् कुतो सुखम्''। (सुखार्थी के लिए विद्या कहाँ है, और विद्यार्थी के लिए सुख कहाँ है) सुनकर सब स्तब्ध रह जाते, और मन ही मन भूरामल के स्वाभिमान की प्रशंसा करते। कभी कभी यह भी सुनने मिलता -

''सुखेन यत् प्राप्यते ज्ञानं, दुखे सति विलीयते'' (सुख सुविधा में जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह थोड़े से दुख-संकट आने पर विलीन हो जाता है)।

स्वाभिमानी रहकर ही श्री भूरामल ने बनारस में अध्ययन किया, यही कारण है कि दुख-संकटों में प्राप्त की हुई विद्या अन्त समय तक स्थिर रही और बिन्दु से सागर की तरह विराट होकर एक विद्यासागर दे गई।

घर लौटते ही भूरामलजी को स्वतंत्र व्यवसाय में जुट जाना पड़ा किन्तु अध्ययन निरन्तर रखा और काव्य की सर्जना भी होने लगी

काशी-पढ़े पंडित के हाथों :

जिन हाथों में साहित्य की चाह थमी हुई हो, वे भला व्यवसाय में कैसे खपेंगे। सो धंधे से मन का उचाट खा जाना स्वाभाविक ही था। उचटते-मन को देख माता ने उन्हें संसार में रम जाने की दृष्टि से उनके विवाह का प्रस्ताव रखा उनके समक्ष। ललित-कलाओं से प्रदीप्त उनका मानस विवाह की बात सुन सुखानुभूति न कर सका, अतः वे प्रस्ताव को टाल गए और जीवन-पर्यन्त अविवाहित रहने का संकल्प रख दिया सयानों के समक्ष।

उनकी नव-सृजन की प्रेरणा श्लाघनीय है। किस्सा है कि जैन विद्वानों से अध्ययन करने के उपरांत और अधिक अध्ययन करने की इच्छा से भूरामलजी, एक अजैन विद्वान् के पास गये। उन्हें अपना मंतव्य बताया तो वे व्यंग कसते हुए बोले, जैनियों के यहाँ कहाँ है ऐसा साहित्य जो मैं तुम्हें पढ़ाऊँ। क्षण भर विद्वान् भूरामलजी अचेत से हो गये जैसे काठ मार दिया हो किसी ने। शब्द बाण की भाँति पर्तें चीरते हुए हृदय तक पहुँच गये। उस दिन उन्हें बड़ी टीस हुई। मन ही मन खेद करते हुए अपनासा मुँह लेकर वापस आ गए अपने निवास पर। उसी दिन उन्होंने चोटी में गाँठ लगाकर संकल्प किया कि मैं अध्ययन करने के उपरांत ऐसे साहित्य का निर्माण करूँगा जिसे देखकर जैनेतर विद्वान् भी दाँतों तले अंगुली दबा लें। बीज पनपता गया, संकल्प दृढ़ होता गया, शास्त्र आराधना और आत्म

साधना होती रही, फलस्वरूप जयोदय आदि कई काव्यों की सर्जना हो गई। जयोदय महाकाव्य की प्रतियाँ कुछ समय बाद बनारस भी पहुँची, जैन–जैनेतर विद्वानों को भी प्राप्त हुई। उन्हें पढ़कर विद्वानों ने कहा कालिदास के साहित्य से टक्कर लेने वाला जैन–साहित्य यह है।

पं० भूरामलजी की सरल सात्विक प्रवृत्ति को लेकर एक सुन्दर आख्यान मिला है–

आचार्य शांतिसागरजी के पट्ट शिष्य आचार्य वीरसागरजी के संघ में ब्र० पं० भूरामलजी संघस्थ साधुओं को अध्ययन कराते थे। संघस्थ साधुओं के कमंडलु में प्रासुक जल भरने वाला एक ब्रह्मचारी नियुक्त था, वह भूरामल के स्वभाव से परिचित था। एक दिन किसी कारण वश उसे कहीं जाना था, वह अपना काम पं० भूरामल को सौंपकर वीरसागरजी को बिना बताये चला गया। एक दो दिन तक नहीं आ पाया, अतः कमंडलों में जल भरने का काम भी भूरामल ही करते रहे। जबकि वह उनका कार्य नहीं था। एक दिन जल भरते हुए आचार्य वीरसागरजी ने उन्हें देख लिया, किसी ब्रह्मचारी के द्वारा बुलाकर कहा–पंडित जी यह आपका काम नहीं है, यह तो दूसरा ब्रह्मचारी करता है, फिर आप क्यों कर रहे हो? भूरामलजी कैसे कहने वाले थे शिकायती बात? सो बात काटकर बोले, गुरु सेवा करना तो हमारा भी कर्तव्य है। कर्तव्य तो है लेकिन वह व्यक्ति कहाँ गया? भूरामलजी कुछ उत्तर न दे सके, हाथ जोड़कर बोले महाराज अभी तो था, यहीं कहीं होगा। जब तक महाराज पूरी घटना को भाँप गये कि पानी वाला ब्रह्मचारी अपना काम पं० जी को सौंपकर चला गया है, फलतः सीधे साधे पंडित जी चुपचाप काम करते रहते हैं। सो मुस्काते हुए बोले–आप तो आज मुझे भी सिखाने लगे! भूरामलजी को कहने के लिए शेष कुछ बचा भी नहीं था, सो मुस्कराते हुए चरणों में सिर धर दिया और चले गये अपने निवास की ओर...। उस दिन पूज्य वीरसागर जी मन ही मन भूरामल की सरलता, नम्रता एवं मद–रहित ज्ञान की प्रशंसा कर मुस्काते रहे। व्यापार बनिज कर जीवन सफल बनाने वाले व्यक्ति को जीवन का साफल्य बनिज में नहीं,

आवश्यकताओं में नहीं, भौतिक परीक्षाओं में नहीं दिखा। अतः धीरे धीरे अर्थ अर्जन करने वाला व्यक्तित्व ज्ञान और ध्यान अर्जन करने के पथ पर बढ़ने लगा। लग गया चिन्तन–मनन में।

उसके मानस से उद्भूत शब्द–धारा ने अनेक ग्रन्थों को जन्म दिया। साहित्य और धर्म के महासागरों में अवगाहन करते हुए संस्कृत में सात दयोदय, भद्रोदय, सुदर्शनोदय, वीरोदय, जयोदय, मुनि मनोरंजन शतक और प्रवचनसार सामने आए तो हिन्दी में चौदह ग्रन्थ जैन मानस को मिले। यह सब कार्य बालब्रह्मचारी पं० श्री भूरामलजी के हाथों से संपन्न हुआ था।

एक दिन उनके अंतस् में स्थापित ज्ञान ने सम्यक् चरित्र का आह्वान किया तो वे ५१ वर्ष की उम्र में गृह–त्याग कर चल पड़े दीक्षा–पथ पर। संवत् २००४ में ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और ८ वर्ष ब्रह्मचारी अवस्था में व्यतीत किये। फिर सम्वत् २०१२ में क्षुल्लक दीक्षा ली और ४ वर्ष बाद सम्वत् २०१६ मे तत्कालीन आचार्यवर शिवसागर जी मुनि महाराज से जयपुर, उपनगर खानिया (राजस्थान), में मुनि–दीक्षा ग्रहण कर मुनि–पथ के पंथी बने। मुनि हो अपने देहात्म को तपस्या में प्रवृत्त किया और संसारवासियों के लिए धर्मपंथ प्रशस्त किया।

लगभग १० वर्ष बाद, नगर नसीराबाद के प्रबुद्ध–समाज ने एक राय होकर उन्हें आचार्यपद पर आरुढ़ करना चाहा, उस समय तक उनके संघस्थ शिष्यों में प्रमुख पू० मुनि विद्यासागरजी उनके अविभाज्य अंग के रूप में ख्यात हो चुके थे। अतः समाज ने पू० विद्यासागरजी के सान्निध्य में, ७ फरवरी १९६९ (तदनुसार फाल्गुन कृष्ण पंचमी, शुक्रवार, वि.सं. २०२५) को पू० मुनि ज्ञानसागरजी को आचार्यपद पर विराजने की प्रार्थना की, जो उन्हें न चाहते हुए भी, स्वीकार करना पड़ी। वे उस दिवस हो गये प.पू० आचार्य १०८ श्री ज्ञानसागरजी महाराज।

एक जून सन् १९७३ दिन शुक्रवार को समाधिमरण पूर्वक नगर नसीराबाद में उन्होंने श्रेष्ठ साहस का परिचय देकर मृत्यु को अपना कर्तव्य करने का अवसर प्रदान किया शान्तचित्त से और हो गए मृत्युञ्जय।

श्रमण परम्परा में विशेष स्थान बनाने वाले उन महान् मुनि का हम स्मरण करते हैं तथा उनके परम मेधावी शिष्य आचार्यवर विद्यासागर मुनि महाराज को अपने मध्य उपस्थित पाकर कृतकृत्य होते हैं। हमें वर्तमान में 'ज्ञान' और 'विद्या' एक साथ सुलभ हैं...यह हमारे किसी अदीठ पुण्य का सुफल है।

आज के भारत में, मुनियों के मध्य, दिवाकर की तरह सदा ज्ञान और ध्यान से प्रकाशित आचार्य विद्यासागरजी महाराज को गुरुवर ज्ञानसागरजी महाराज हमें दे गए हैं, जो उनकी ही तरह ज्ञान-पुञ्ज के धारक तपस्वी हैं। हम में से जिनने पू० ज्ञानसागरजी का वियोग सहा है, उन्होंने तुरन्त ही पू० विद्यासागरजी का संयोग पाने का सौभाग्य भी पाया है। सच भी है गुरु ज्ञान का लहराता सागर था तो शिष्य 'विद्या का गंभीर सागर' है। इस महान् उपलब्धि का श्रेय पू० ज्ञानसागरजी को ही जाता है।

(गुरुवर ज्ञानसागरजी के चरित्र-वर्णन में एक पूरा ग्रन्थ भर सकता है, यहाँ तो हम उनके प्रिय शिष्य विद्यासागरजी का जीवन दर्शन पढ़ रहे हैं। अतः पुनः हम मूल कथा पर आते हैं। जिन पाठकों को पू० ज्ञानसागरजी की जीवनी पढ़ना हो, वे इस लेखक द्वारा लिखित 'ज्ञान का सागर' पढ़े।)

चले मूल कथा की ओर :

गुरुवर ज्ञानसागरजी कुछ उत्तम श्रावकों के साथ चर्चा कर रहे थे। समीप ही बैठे थे विद्यासागरजी। लोग गुरु की ओर देखकर नजर उठाते तो विद्यासागर के मुखमंडल पर धर देते, वहाँ से उठाते तो ज्ञान सागर के। तब तक एक प्रौढ़ व्यक्ति पूछ बैठा-''गुरुवर, आपने दीक्षा कब ली थी? प्रश्न अचानक ही रखा गया था। इसलिए सभी जन यह न समझ पाए कि प्रश्नकर्ता किसकी दीक्षा के विषय में पूछ रहे हैं-गुरु ज्ञानसागर की दीक्षा के विषय में या जिनने अभी कुछ दिन पहले दीक्षा प्राप्त की है उन विद्यासागरजी के विषय में।

सम्भवतः गुरु ज्ञानसागर प्रश्न के द्विअर्थी बोध को भांप गए थे, इसलिए उन्होंने पूर्ण गंभीरता से उत्तर दिया- 'अभी-अभी'।

उनके स्वस्थ उत्तर पर प्रश्नकर्ता ने कौतूहल बतलाते हुए कहा– महाराज आप तो काफी समय से मुनि हैं फिर अभी–अभी कैसे?

ज्ञानसागरजी समझ गए कि प्रश्नकर्ता ने प्रश्न का संबंध विद्यासागर से काटकर मुझसे जोड़ दिया है, अतः अपने शब्दों को पुष्ट करते हुए बोले–हाँ भैया सही तो कह रहा हूँ, अभी–अभी दीक्षित हुआ हूँ। प्रश्नकर्ता आश्चर्य में पड़ गया। बोला, महाराज सही सही बताओ। तब ज्ञानसागरजी मुस्कराते हुए बोले–अभी अभी अंदर से प्रतिक्रमण करके ही बाहर बैठा हूँ और प्रतिक्रमण का अर्थ है कि जो बुद्धि–अबुद्धि पूर्वक पाप हुए हैं, उनकी आलोचना करना, त्याग करना, त्याग का नाम ही दीक्षा है। इसलिए साधु की दीक्षा तो हर समय हुआ करती है ...! उनके इस तर्क–सिद्ध उत्तर से सभी श्रावकगण हँस पड़े। विद्यासागरजी भी हँसे बगैर न रह सके। वे जान रहे थे कि अभी–अभी कौन दीक्षित हुआ है और उत्तर किसे देना पड़ रहा है। धर्ममय वातावरण में सात्विक मुस्कानें फैल गयीं।

श्रद्धा के डेरा पर फ्लू का झंडा :

सम्पूर्ण अजमेर चाँद और सूरज का प्रकाश का एक साथ पा रहा था। लोगों में भक्ति संचार करने वाली लहरों का क्रम बढ़ता जा रहा था। तभी वहाँ आँखों की बीमारी फैली–'आई फ्लू'। उसका राज्य हर आँख पर दिखने लगा। जिन आँखों में मुनियों की छवि अँजी रहती थी वे आँखें भी फ्लू से फूलकर बोझल और जलनशील हो गई थीं। फ्लू–फ्लू था, वह अपने प्रकोप के झंडे सबके नेत्रों पर फहराते हुए देखना चाहता था। चाहे वह रागी हो चाहे विरागी। फ्लू सबसे रार लेता बढ़ता चला जा रहा था। मुनि संघ की ओर भी बढ़ा और बेचारे त्यागियों को सताने लगा। संघ में उस रोग से बच सके केवल ज्ञानसागरजी। शेष तो एक के बाद एक पीड़ित होते गए। बार किया फिर मुनि विद्यासागर पर, साधनाशील मुनि आई–फ्लू की माया से अपरिचित थे। जिनके चित्त में कभी कोई विकार प्रवेश न कर सका था, उनके नेत्रों में फ्लू प्रवेश कर गया! आँखों में तेज जलन होने लगी। लाल/सुर्ख आँखें–सूखती तो अंगारा दिखती, गीली होती तो गुलाब–

जामुन। श्रावक इन अंगारों और गुलाब जामुनों का दर्द अच्छी तरह जानते थे अतः चिकित्सा के लिए प्रयास करने लगे। सप्ताह से चलकर माह पूर्ण हो गया, आँखों में आराम न लगा। विद्यासागरजी न पढ़ पाते, न सामायिक कर पाते, बैठे रहते गुरुवर ज्ञानसागरजी के पास और उनके मुखारबिन्दु से स्वाध्याय सुन अपनी सामायिक पूरी करते। यह क्रम करीब दो माह चला।

एक तो आँखों में भारी वेदना, ऊपर से महाराज जी एक दिन के अंतर से आहार लेते, एक दिन उपवास रखते–भक्तगण बेचैन हो जाते। लोग 'दूबरे पै दो आषाढ़' की कहावत कहते और चुप रह जाते, काश उनकी बातें महाराज मानते होते!

❑ ❑ ❑

दवाओं ने आराम न पहुँचाया सो एक दिन नेत्र–विशेषज्ञ आ पहुँचे भक्तों के साथ। उनने देखा–दाखी की। परामर्श दिया चश्मा लगाना पड़ेगा। गुरु ज्ञानसागरजी चकित, इतनी सी उम्र में चश्मा! न, कोई और बात करो। चले गए विशेषज्ञ।

आँख का दर्द न घट रहा था न बढ़ रहा था, एक–सा चल रहा था कुछ दिनों से। तब तक एक दूसरे डाक्टर लाए गए श्रावकों द्वारा। उनने भी नेत्रों का निरीक्षण किया। एक पुस्तक के कुछ पृष्ठों को पढ़वाकर देखा, विद्यासागरजी ने खटाखट पढ़ दिये। सुनकर डा. बोले वैरीगुड, कोई आवश्यकता नहीं चश्मा लगाने की। सब श्रावक खुश। फिर डा. साहब बोले, दवाई से ठीक हो जायेगी। सभी तो नहीं, किंचित् दवाओं की स्वीकृति दे दी विद्यासागरजी ने। धीरे धीरे दवा डालने से आराम लगा और दो माह से आँखों को जलाने वाले रोग की कर्मों की तरह निर्जरा हो गई।

रोग का आभार, गुरु की स्तुति :

परीषह आकर चला गया। तपस्वी जहाँ के तहाँ अड़िग रहे। उन्होंने रोग को धन्यवाद दिया–उसके कारण परम पूज्य गुरुवर ज्ञानसागरजी के मुख से स्वाध्याय सुनने का गौरव मिला। मिला उनके चरणों में अधिक देर तक रुकने का सान्निध्य।

विद्यासागर मुनि–दीक्षा के बाद से ही अपने भावों को कभी कभी उतारने लगे थे कागजों पर। एक युवक का चिन्तन भीतर से गुंजन कर रहा था, फलतः कविताओं का जन्म होने लगा। उनकी कलम ने पहली कविता लिखी थी–गुरु वंदना के रूप में। गुरु का जो गुणगान हृदय के कोने–कोने में भरा था, वह शब्द बनकर निःसृत होने लगा। जो मन में था वही बाहर आया। काव्य का काव्य, भक्ति की भक्ति। गुरु वंदना का लेखन जब पूरा हो गया तो उस रचना का संज्ञाकरण हुआ 'पूज्य ज्ञानसागरजी महाराज की स्तुति'। वह स्तुति भी वे किसी को न बतला सके। यह और बात है कि देखने वालों ने देख ली। श्रावक कभी–कभी इसी स्तुति को सामूहिक रूप में गाने लगे। स्वतः मुनि विद्यासागरजी भी अपने कंठ से अक्सर सस्वर उसे पढ़ते थे।

विद्यासागर की कलम चल पड़ी। अध्यात्म से पूर्ण, भक्तिगुण लेकर ही चली और चलती रही। धीरे–धीरे आचार्य शांतिसागरजी की स्तुति भी तैयार हो गई। फिर आचार्य वीरसागर की और उसके बाद आचार्य शिवसागर पर भी उनने स्तुतियाँ लिखीं।

गुरु–वंदना से प्रारम्भ हुई उनकी लेखनी रोज–रोज नई–नई भावभूमियाँ लेकर चलने लगी और चिन्तन के मौलिक स्थलों की संरचना होने लगी– डायरी–दर–डायरी।

तपस्या, गुरु–भक्ति और साहित्य–सर्जन के पठारों पर चल रहे थे विद्यासागर। गुरु प्रसन्न। श्रावक प्रसन्न। इतना ही नहीं जिस वातावरण में रुकते ठहरते, वह प्रसन्नता से भर जाता। लोग उनकी रचनाएँ सुनने के लिए भाँति–भाँति से चेष्टाएँ करते रहते। कुछ धीमान बाजौट के पास बैठे–बैठे चुपचाप रचनाएँ पढ़ जाते और घर जाकर प्रसन्नता से चर्चा करते। अपने युवा योगी के लेखन कार्य से हर व्यक्ति आनंदित था, चाहे हो वह सामान्य श्रावक, चाहे हो वह कोई बुद्धिजीवी और चाहे हो वह कोई तपसी। सब आनंद लेते। प्रशंसा करते।

अड़सठ की अड़ी भी न चली और उस सन् को भी एक एक दिन

की गति से चला जाना पड़ा। सन् ६९ का आगमन हो गया। विद्यासागर नाम के जोगी अपने गुरु के साथ-साथ छाया की तरह विचरण करते रहे। तपस्याओं का क्रम सघन होता गया। उपसर्ग सहने की क्षमताएँ बढ़ती गई। ज्ञानाभ्यास के लिए बैठके बढ़ती गईं।

वर्षायोग :

केशरगंज (अजमेर) के नागरिकों का भाग्योदय था कि मुनिसंघ ने चातुर्मास की स्थापना वहाँ कर ली।

ज्ञानसागरजी का चातुर्मासी-कार्यक्रम प्रारम्भ हो चुका था। लोग पल-पल का समय जोड़ते खड़े रहते, पर मुनिश्री का समय मुश्किल से ही मिल पाता। जब गुरु का समय न मिलता, तो शिष्य का तो और भी न मिलता क्योंकि वे तो अपने गुरु की आज्ञा लेकर ही किसी को वार्तादि का समय दे पाते थे।

आया प्रसिद्ध परिवार :

सदलगा से मल्लप्पाजी का परिवार केशरगंज के श्रावकों में आकर समा गया था। रोज चौके लगाए जाते, रोज आहारों का पुण्य अर्जित किया जाता, रोज खुशियों के दीपक जलाए जाते।

अनन्त अब तेरह-चौदह वर्ष के हो चुके थे, और शांतिनाथ बारह के, दोनों वैराग्य की महिमा को समझने का प्रयास कर रहे थे विगत वर्ष की भांति अजमेर की पुण्य-रजा-धरती पर।

वैराग्य के बीज :

दो माह तक ज्ञानसागरजी के प्रवचन श्रवण का सुयोग पाया, वे बालकद्वय जो कुछ समझ रहे थे, उससे कोई पृथक-भूमि का निर्माण हो रहा था उनके किशोर हृदय में, जिसे वे स्वतः न अनुभूत कर पा रहे थे।

गुरु ज्ञानसागरजी अपने प्रवचन के पूर्व आदि-महामंत्र-णमोकार अवश्य बोलते थे, फिर चत्तारिदण्डक का पाठ करते थे। बालक अनन्त और बालक शांतिनाथ ने दो माह में उन्हीं दो बातों पर अधिक ध्यान दिया और उन्हीं को गुना। भाषा की मजबूरी जो थी। प्रवचन की गंभीरताएँ और

शिक्षाएँ वे अपने मानस में उतारने का प्रयास करते, पर बाल-मानसिकता की अपनी खूबी होती है। उन्हें धर्म भी अच्छा लगता तो घर भी अच्छा लगता, उन्हें शिक्षाएं आकर्षित करती तो खेलकूद में भी पसंद बनी रहती। यह कि दो माह का समय व्यतीत कर देने के बाद भी कोई यह नहीं समझ सका था कि बालक अनन्त और शांति भी, आगामी किसी वर्ष मुनि बन सकते हैं। उनकी ऐसी कोई बाह्य-तैयारियाँ भी तो देखने में नहीं आई थीं उस वर्ष। केशरगंज के राजस्थानी भाषा-भाषियों के मध्य कुछ सप्ताह से कन्नड़ भाषा वालों का जमाव स्पष्ट देखने मिल रहा था। वे अपने क्षेत्र से आये प्यारे युवा योगी मुनि विद्यासागरजी का प्रवचन सुनना चाहते थे, वह भी कन्नड़ में। हिन्दी पूरी-पूरी जो नहीं आती थी उन्हें।

मुनि विद्यासागरजी की दीक्षा का यह दूसरा वर्ष ही था। वे प्रवचनादि अपने गुरु के आदेश से ही करते थे। कन्नड़ भाषा-भाषी श्रावकों ने एक दिन पूज्य ज्ञानसागरजी के समक्ष अपनी भावना रखी। ज्ञान के सागर आचार्य ज्ञानसागर ज्ञान को किसी भी भाषा में जनहित की ओर स्फुरित होता देखना चाहते थे। उन्होंने युवा शिष्य विद्यासागरजी को संकेत कर दिया।

कन्नड़ भाषा-भाषी श्रावकों ने फिर मुनि विद्यासागरजी से प्रार्थना की, उनने निवेदन स्वीकार करते हुए प्रवचन दिया। प्रवचन से पूर्व किसी विद्वान् ने पूछा था-महाराज आपको वैराग्य-भाव कैसे ही आया था?

चूँकि मुनि विद्यासागर प्रवचन देने वाले थे, सो उनने पृथक् रूप से कोई उत्तर न दिया, बोले- बस, वही तो सुना रहा हूँ।

मुनिश्री ने कन्नड़ बोली में सुन्दर प्रवचन किया। श्रावक मंत्रमुग्ध सुनते रहे। उन्होंने उस बोली में बतलाया था-मुझे नौ वर्ष की उम्र में वैराग्य के दर्शन हो गए थे, जब पूज्य शांतिसागर जी के प्रवचन ग्राम शेडवाल में सुनने का लाभ मिला था। उस समय उनने तीन सुन्दर किस्सों का जिक्र किया था, जो मुझे उसी क्षण प्रभावनाकारी सिद्ध हुई थीं। वे सभी धर्म पर विश्वास करने की प्रेरणा देतीं थीं। उन्हीं से वैराग्य भाव मन में आया था।

मुनि विद्यासागरजी ने कथाओं का संक्षिप्तोल्लेख किया था उस रोज। उनमें से एक प्रसंग यहाँ–

एक पंडित प्रतिदिन अपने कुँए में घुसकर जल–देव की पूजा करता था और लोगों को बतलाता था कि उसे पूजनोपरांत जल–देव के दर्शन होते हैं। इस तरह की चर्चा से जहाँ वह अपने धर्म को औरों से उच्च बतलाता था, वहीं सामान्य लोगों के बीच महत्त्वपूर्ण भक्त जाना जाता था। उसकी दूर–दूर तक इज्जत होती थी।

एक दिन एक ग्वाला उसके पूजन के समय आया और निवेदन किया–पंडित जी, हम भी जल–देव के दर्शन और पूजन करना चाहते हैं।

पंडित उसकी बातों पर खूब हँसा–तुम हमारी तरह न तो पूजा कर सकते, न भक्ति, न प्रसाद चढ़ा सकते और न मन्त्र बोल सकते, वह गुण सिर्फ मैं जानता हूँ।

–जो हो पंडित जी हमें भी बतलाओ।

–बताऊँ?...... सुन। कुँए में डूब कर स्वर साधना पड़ता है। तब कहीं जाकर भगवान् दर्शन देते हैं।

–अगर मैं कुँए में घुस जाऊँ और डूब कर उन्हें खोजूँ तो मिल जाएँगे?

–पंडित लापरवाही से बोल बैठा

–हाँ, मिल जाएँगे,पहले घंटे, दो घंटे कुँए में नाक बंद कर डूबना सीखना पड़ेगा।

–अच्छा पंडित जी। दूसरे दिन स्नानोपरान्त ग्वाला पंडित से पूर्व कुँए पर आया, उसके बच्चे, पत्नी एवं अन्य स्वजन पनघट के पास खड़े हो गए, वह धम्म से कुँए में कूद गया। आवाज सुनकर पंडित घर से बाहर आया, उपस्थित लोगों से कारण जाना और वहीं खड़ा हो गया। ग्वाला जो कुँए में डूबा सो डूबा ही रह गया। पंडित को लगा–''ग्वाला मारा गया मुफ्त में। बड़ा भक्त बनने आया था।'' फिर भी लोक–लाज के कारण वह वहीं खड़ा रहा। बाहर खड़े सभी लोग ग्वाले की प्रतीक्षा करते रहे। पंडित

पशुपेश में पड़ा था। वह जानता था कि ग्वाला अब तक मर चुका होगा। उसका शव ही अब ऊपर आवेगा। वहाँ ग्वाला नाक बंद कर प्रार्थना कर रहा था जल देव से–''हे देव, आप पंडित को रोज दर्शन देते हैं, एक बार मुझे भी दें, मेरा जीवन भी कृतार्थ करें।''

ग्वाले की सांस टूटे, उसके पूर्व जल–देव को निर्णय लेना पड़ा, उन्हें लगा, इसका विश्वास अटूट है, यदि दर्शन न देंगे तो व्यर्थ ही मारा जावेगा यह। फलतः कुँए में जल–देव प्रकट हो गए। उनकी भव्य–छवि देखकर ग्वाला कृतकृत्य हो। गया। हाथ जोड़कर उनके चरणों में शीश धर दिया। देव बोले–क्या चाहिए तुझे? चाहिए कुछ नहीं देवराज। मैं तो बस आपके दर्शन चाहता था, सो हो गए। देव उसे आशीष दे अंतर्ध्यान हो गए। दृश्य कुँए के ऊपर से सभी लोग देख रहे थे। पंडित जी भी। वे शर्म से झुक गए। ग्वाले के चरणों की वंदना की ओर बोले सच्चे भक्त तो आप हैं। मैं तो मात्र दिखावा करता हूँ। आज आपके कारण हमें भी दर्शन हो गए। धर्म का सही अर्थ आज ही समझा हूँ। आपके अडिग विश्वास से ही यह क्षण उपस्थित हुआ है; आप सच्चे धर्मात्मा हैं। मुझे अपनी चरण–रज प्रदान कीजिए। पंडित अपने विगत छल–छुद्र पर पश्चाताप करता रहा। दिखावा और आडंबर पर आत्म–ग्लानि करता रहा। ग्वाला जल–देव से साक्षात्कार कर अपने हिल्ले में जुट गया।

मुनि विद्यासागरजी कन्नड़ भाषा में श्रावकों को समझाते हुए कहते हैं–धर्म दिखावा, आडंबर, चमत्कार में नहीं है, वह आत्मा में जन्मे विश्वास में है और कहीं नहीं। मुझे नौ वर्ष की उम्र में यह विश्वास हो गया था, इसे मैं अपना सु–भाग्य मानता हूँ।

दो माह का समय धर्म के सागर में बिता देने के बाद मल्लप्पाजी का परिवार पुनः अजमेर से स्वगृह की ओर लौट पड़ा, मन में विद्यासागर की छवि संजोकर।

ज्ञान के समुद्र में पीड़ा का ज्वालामुखी :

कुछ दिनों से पूज्य आचार्यश्री ज्ञानसागर के शरीर में अत्यधिक

पीड़ा होने लगी थी। उनका कष्ट लोगों से न देखा जाता। हर गठान में दर्द। घुटने, टिहुनी आदि सभी जोड़ों में पीड़ा। दर्द होना भी स्वाभाविक था, क्योंकि उम्र भी तो ८० को पार कर चुकी थी। गर्दन का दर्द पृथक्। लेटते समय गर्दन को उठाकर हाथ का सिराना बना लेते, फिर लेटते। विद्यासागरजी के साथ-साथ अन्य लोगों को भी बात समझ में आ गई कि लेटते समय गुरुजी के सिर के नीचे कुछ तकिया जैसा लगा रहे तो उन्हें आराम मिलता है। विद्यासागर उनके समीप ही लेट जाते और अपनी भुजा का सिरहाना बनाकर उनकी गर्दन के नीचे लगा देते। दोनों लेटे रहते।

श्रावकों को गुरु जी की वेदना स्पष्ट रूप से समझ में आ रही थी। उन्होंने एक छोटी सी काष्ठ की चौकी बनवाई और जब ज्ञानसागर लेटने लगे तो उनके सिरहाने लगा दी। ज्ञानसागरजी यह देख, उठकर बैठ गए। पहले दिन ही तकिया के लिए सामान्य रूप से मना कर दिया था। सो चौकी को उठाकर अलग कर दिया। पुनः दूसरे दिन श्रावकगण शाम के समय, उसे ले आये तो (अपने परम भक्त) कजौड़ीमल को पास में बुलाकर ज्ञानसागरजी व्यंग से बोले... लकड़ी का तकिया तो गड़ेगा, क्योंकि यह कड़ा रहता है, ऐसा करो इस पर चारों तरफ से एक मुलायम मखमल की गद्दी लगा दो, ताकि फिर अच्छी नींद आये।

ज्ञानसागरजी की शब्द-वर्षा से लज्जित कजौड़ीमल चौकी उठाकर नौ दो ग्यारह हो गए। विद्यासागर को मिला आदर्श का पाठ। गुरु के हर आदर्श को वे खुली नजर से देखते-समझते, उससे प्रेरणा लेते और अपने जीवन में उतारते चलते। चौकी की बात उनके तपस्या-प्रधान हृदय में गहराई तक समा गई उस रोज। वे पल-पल अपनी तपस्या पर ध्यान रखते- कोई शिथिलाचार न आ पाए। सचेत रहते।

ब्र० पन्नालाल की समाधि :

जिस स्थल पर मुनि प्रवर ज्ञानसागरजी अपने शिष्य विद्यासागर के साथ चातुर्मास अवधि पूर्ण कर रहे थे उसे कुछ लोग केशरगंज कहते थे, कुछ केशरियागंज। इसी केशरियागंज में तात्कालीन ब्रह्मचारी श्री पन्नालाल

जैन अपने जर्जर शरीर की फटकार सहते-सहते, पीड़ा महसूस करने लगे थे। उन्हें एक दिन, विद्यासागरजी ने समाधि मरण के विषय में गंभीरता से समझाया। युवा मुनि की बातें वृद्ध ब्रह्मचारी को जगाती हुई सी लगी। वे काफी सोच विचार करते रहे। दूसरे दिन वे सीधे मुनि ज्ञानसागर के चरणों के निकट पहुँचे और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे-हे संतप्रवर, यह शरीर धोखा देने लगा है, इसमें शक्ति नहीं बची है, यह तपस्या के पथ पर चल आत्मा को विघ्न पहुँचा रहा है, स्वतः जर्जर और निरर्थक हो रहा है। आत्मा को भी जर्जर कर देना चाह रहा है सो कृपा कर मुझे सल्लेखना-व्रत प्रदान करें, ताकि मैं स्वेच्छा से इसका त्याग कर सकूँ और इसके चक्कर से आत्मा को मुक्त कर सकूँ।

श्रद्धेय ज्ञानसागर परम ज्ञानी थे। वे ब्रह्मचारी जी की आवाज में सच्चाई पा रहे थे; मगर वे यह भी सोच रहे थे कि सल्लेखनाव्रत यदि उन्हें दे दिया तो उनकी वैयावृत्ति कौन करेगा। वे स्वतः अपने तन को वृद्ध और दुर्बल पा रहे थे। सोचते-सोचते उनकी आँखें विद्यासागर के चेहरे पर केन्द्रित हो गईं। दोनों शान्त। एक दूसरे को देखते रहे। जैसे एक आत्मा अन्य आत्मा से कोई गोपन-चर्चा कर रही है। विश्वास के अंकुर जम आए जब ज्ञानसागर के मानस में, तब उन्होंने ब्रह्मचारी पन्नालालजी को सल्लेखना-दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के बाद उनकी पदोचित परिचर्या का प्रभार दिया विद्यासागरजी को।

मुनि विद्यासागरजी पन्नालालजी (क्षपक) के देह को आवश्यक चर्चाओं का योगदान देते-दिलाते उनके आत्म-विकास पर ध्यान देने लगे। वे उनमें त्याग की भावना बलवती करने में सफल रहे। अन्न-जलादि के त्याग के बाद उन्होंने ब्रह्मचारी जी को वस्त्रादि त्याग कर मुनि दीक्षा लेने प्रेरित किया।

विद्वान् क्षपक अपने युवा योगी के योगपूर्ण वार्तालाप से सीमाधिक प्रभावित हुए और जब ज्ञानसागरजी उनके समाचार लेने वहाँ पहुँचे तो उनसे दिगम्बरी-दीक्षा प्रदान कर देने की प्रार्थना करने लगे। ज्ञानसागरजी

अपने जीवन के साथ अन्यों का भी जीवन सुधारना चाहते थे, अतः उनने दीक्षा प्रदान कर दी। ब्रह्मचारी जी हो गए मुनि पवित्रसागर जी।

विद्यासागरजी गुरु-आज्ञा के अनुसार उनकी वैयावृत्ति में बराबर पल-पल ध्यान देते रहे। एक दिन शांतिपूर्वक शांतिपथ पर चलने की तैयारी कर ली, पवित्रसागरजी ने। विद्यासागरजी ने उन्हें अंतिम उपदेश दिया और वे असार से सार की ओर गमन कर गए। एक आत्मा सही पथ पा गयी।

ज्ञानसागरजी के सान्निध्य में विद्यासागरजी के हाथों एक और मंगलकाज पूर्ण हो गया। दक्षिण का संत उत्तर का बसन्त बन गया।

❑ ❑ ❑

आचार्यश्री की जन्म कुण्डली-१
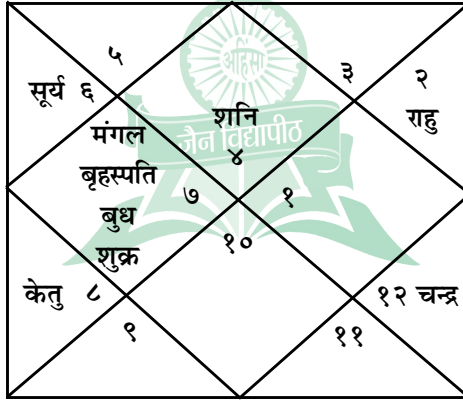
जन्म तिथि : अश्विन शुक्ल १५, शरद पूर्णिमा, संवत २००३, तदनुसार दिनांक १०-१०-१९४६ रात्रि ११.३० पर जन्म।

श्री शुभ संवत् २००३, शाके १९६८, अश्विन मासे, शुक्ल पक्षे, १५ (पूर्णमासी) ५०/२५ उत्तराभाद्रपद नक्षत्र, २२/६ उपरिरेवती, २ रा चरण व्यतिपात योग, वालव करण, दिनमान २८/५९, रात्रि ३१/१ उभय ६०/० सूर्योदयात् इष्ट ४८/१३ सूर्य गतांश, ५/ २२/४२/३९ तत्र लग्नम्, ३/२१/ १९/३९, इसमें रेवती द्वितीय चरण जन्मत्वात्, मीन राशि विप्रवर्ण, राजयोनि,

मनुष्यगण, जलचर वश्य मध्य नाड़ी, गुरु स्वामी।

(ज्योतिषी के अनुसार आपका जन्म उक्त संवत में शरद पूर्णिमा की मध्य रात्रि, १.५० बजे बतलाया गया है, तदनुसार जन्म तिथि ११.१०.१९४६ मानी जाती है।)

जन्म पत्रिका :

श्री शुभ संवत् २००३ शाके १९६८ आश्विन शुक्ल १५ (शरद पूर्णिमा) रेवती नक्षत्र २ रा चरणे इष्ट मूल ८/१३ व्यतिपात योगे, वालव करणे मीन राशि, लग्न ३/१९ विंशोत्तरी महादशा बुध दशा भोग्य ८ व० ११ मा० १७ दि०।

दीक्षा समय की कुण्डली-२
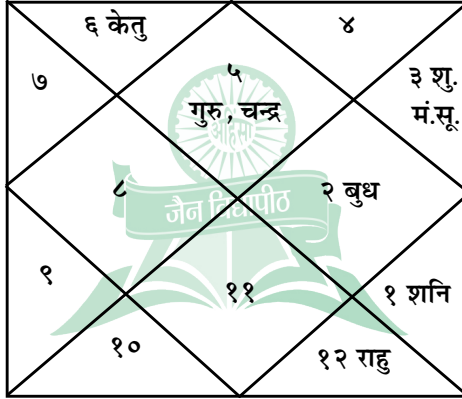
आचार्य पद प्राप्ति के समय की कुण्डली-३
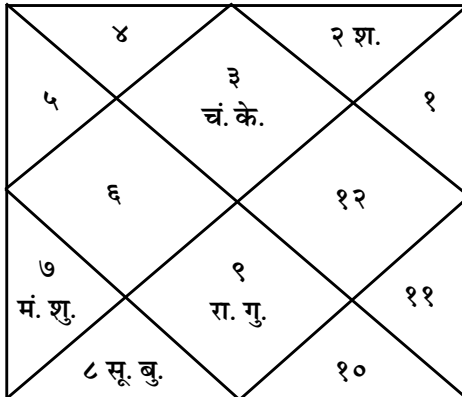
जन्म कर्क लग्न का है, लग्नेश चंद्रमा भाग्य भाव में, भाग्येश गुरु चतुर्थ में, चतुर्थेश लाभेश शुक्र पंचम भाव में केतु के साथ है। दशमेश, पंचमेश मंगल चतुर्थ भाव में, व्ययेश तृतीयेश बुध चतुर्थ भाव में है। शनि, लग्न में है, इससे दृढ़ निश्चयी, महान् त्यागी, पुष्ट शरीर होने का योग है।

तृतीय तथा एकादश भाव में सूर्य-राहू होने से पणफर संज्ञा का योग बना है, इस योग में जन्म लेने वाले जातक महान् त्यागी, बुद्धिमान तार्किक और प्रतिष्ठावान् होते हैं। (जातक तत्त्व से)

सप्तमेश-अष्टमेश-शनि लग्नस्थ होने से आयुष्मान, गृहस्थ जीवन से विरक्ति होने का योग बना है।

विशेष-शनि से गुरु-मंगल-बुध का केन्द्रीय योग बना है, इससे संन्यासी होने का योग, किन्तु शनि की प्रबलता से वस्त्रहीन-त्यागी (संन्यासी) दिगम्बर मुनि होने का योग है।

कुण्डली क्र. २ से दीक्षित होने के समय गुरु-चन्द्र योग लग्न में हैं, फलतः दीक्षित जीवन में पूर्ण सफलता का योग है। आपके उपदेशों से जन-कल्याण होगा तथा धार्मिक प्रवृत्ति में वृद्धि होगी। लोग आपके अकाट्य सिद्धान्तों, तर्कों से प्रभावित होकर धर्म की ओर प्रवृत्त होंगे। आपके द्वारा विद्या और धर्म के नये-नये संस्थानों को जीवन मिलेगा।

राहु अष्टम् में एवं केतु द्वितीय में हैं, राहु-केतु से काल सर्प योग बन रहा है, तथा पूर्ण माला योग है। अतः अनेक कठिनाइयों, विषम परिस्थितियों के बीच जब प्रतिकूल वातावरण बन रहा था, आपने दीक्षा ली और दीक्षित हुए। गुरु चन्द्र लग्नस्थ होकर आपको सफलता के लिए श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं। इसी बीच आपको सर्पदंश पीड़ा भी राहु अष्टम में होने से, होना चाहिए। राहु अष्टम में प्रवासी योग कारक है। शनि भाग्य स्थान में तथा भाग्येश मंगल लाभ भाव में सूर्य-शुक्र के साथ है, ये राजयोग होते हुए भी त्याग वृत्ति का कारक है।

कुण्डली क्र. ३ आचार्य पद प्राप्त होते समय राशि मिथुन लग्न है, लग्नेश सुखेश-बुध षष्ठ भाव में सूर्य के साथ है, इससे दृढ़ संकल्पवान

और अपने पद की गरिमा/प्रतिष्ठा को गौरवान्वित करते रहेगें। विंशोतरी दशाओं के आधार पर बुध दशा २७/९/५५ तक माता की ओर विशेष स्नेह। मातृत्व से प्रभावित होकर ही आप धर्म के प्रति झुके। त्याग भावनाओं में माता का विशेष महत्त्व इस दशा में रहा। तदुपरान्त केतु दशा २७/९/६२ तक रही, तदनुकूल, आप विशेष गंभीर, चिन्तन में व्यस्त रहे होगे। आपको इसी समय राहु लाभ का सर्व प्रकारेण सुखोपभोग की उपलब्धि के कारण, विरक्ति भावों का श्रीगणेश होना चाहिए। आपका चिन्तन, अध्यात्म की ओर इसी समय से प्रवृत्त हुआ होगा। कारण केतु पंचम विद्यास्थान में उत्तम चिन्तनशील बनाता है। पश्चात् शुक्र महादशा २७/९/ ८२ तक रही, शुक्र पंचम में केतु के साथ हैं, इससे इन बीस वर्षों में पूर्ण सुखोपभोग से क्रमशः त्यागी किन्तु परमार्थी जीवन की ओर उत्तरोत्तर दिशा मिलती गई संत-पंथ पर गतिशील होते गए हैं।

उपरांत सूर्य महादशा २७/९/८८ तक है, क्रमशः अनेक संस्थाओं की स्थापना का श्रेय श्री पूज्य आचार्यश्री को मिलेगा। अनेक स्थानों में परमार्थ/ धर्मार्थ केन्द्र जन आकांक्षाओं की पूर्ति के प्रतीक बन जायेंगे किन्तु आप इस दशा में प्रवासी ही रहेंगे। चन्द्र दशा २७/९/९८ तक रहेगी, इस समय विभिन्न धार्मिक कार्य होगे, प्रवास/भ्रमण होगे, किन्तु विशेष बात यह है कि शनि अंतर चन्द्रमहादशा का जो तारीख २७/१२/९२ से २७/७/ ९४ तक रहेगा, आप धार्मिक सद्भाव यात्रा/ धर्म प्रचार के आदर्श-पुंज स्वरूप विशेष यात्रा भी करेंगे। लेखन-कार्य प्रकाशन में सफलता और ख्याति मिलेगी। इस समय आपका चरित्र प्रकाश धर्म के लिए चरमोत्कर्ष सिद्ध होगा। मंगल महादशा को २७/९/९८ से २००५ तक रहेगी, प्रवासी/ भ्रमणशील जीवन के बाद स्थायित्व आ जायेगा। एक निश्चित धार्मिक स्थल पर आप विश्राम लाभ करेंगे।

राहु दशा भी जो सन् २०२३ तक होगी, आपको सुखद/यशकारी और भव्य ख्याति में स्थायित्व प्रदान करेगी। गुरु दशा में बुध-केतु अंतर जो तारीख २७/५/ २०२८ से ९/८/२०३१ तक रहेगी, उस समय आप

अपने प्रकाशपूर्ण जीवन की आभा को प्रस्फुटित करते हुए, निर्वाण द्वारा पंचभौतिक देह को त्याग देवत्व प्राप्त करेंगे।

परम पूज्य आचार्य विद्यासागरजी का नवीन परिचय

नदी, पर्वत, महाद्वीप और महासागर पर से हटकर चलता है जिनका परिचय उन्हें कागज-स्याही में कैसे बाँधा जा सकता है। नदी जो देश में ही नहीं, विश्व में सबसे बड़ी हो वह है नील नदी, छः हजार किलोमीटर से अधिक है उसकी लम्बाई। पर्वत जो विश्व में हजारों पर्वत के मध्य सर्वाधिक ऊँचा हो वह है एवरेस्ट, भारत के उत्तर में तपस्वी की तरह अवस्थित पर्वतराज हिमालय साढ़े आठ किलोमीटर से अधिक ऊँचाई तक जाता है। विश्व का सबसे बड़ा महाद्वीप एशिया, जिसका क्षेत्रफल करीब साढ़े चार करोड़ वर्ग किलोमीटर तक फैला है और विश्व का सर्वाधिक विशाल महासागर प्रशांत, जो क्षेत्रफल और गहराई में अन्य अनेकों सागरों से अधिक एक करोड़ पैंसठ लाख वर्ग किलोमीटर तक विस्तार लिये है, जो गहराई में ६०३३ फीट, माने करीब ग्यारह किलोमीटर से अधिक है। कहने का मतलब जो विश्व में सबसे बड़े हैं, उनके मान और प्रतिमान नप चुके हैं और वे अपनी तमाम विशालताओं के साथ कागज पर अंकन पा चुके हैं, परन्तु समाज के मानस में एक व्यक्तित्व ऐसा है जो नित नई सीमाओं तक विस्तृत हो रहा है, उसे कोई नाप ही नहीं पाता, कोई अंकित नहीं कर पाता। जो करता है, वह दूसरे दिन ही कुछ और जोड़ने बैठ जाता है, अपने कागज-पत्तर में। वह व्यक्तित्व किसी नदी, पहाड़, समुद्र, महाद्वीप का नहीं है वह है एक 'संत' का। ऐसे संत का जो कलयुग में भी 'सतयुगी' कहलाता है।

एक ऐसे मुनि का जो तमाम मुनियों के मध्य हिमालय है, नील है, एशिया है, प्रशांत है।

सच, उनके आदर्श हिमालय से ऊँचे हैं, उनकी वाणी से निःसृत ज्ञानगंगा नील से बड़ी है, उनके यश के फैलाव के समक्ष एशिया-महाद्वीप का क्षेत्रफल छोटा लगने लगा है और उनकी चिन्तन मनन की गंभीरताएँ

प्रशांत सागर को उथला सिद्ध कर रही हैं। वे परम गुरु, वे परम धन्य संत, वे आचार्यरत्न, वे चरित्र चूड़ामणि, वे तपः पूत, वे ज्ञानसूर्य, वे उपसर्गजित, वे विश्रुत-जोगी, वे समाधि विशेषज्ञ, वे महामुनीश्वर, वे धर्म प्रवर्तक, वे महाप्रभावनाकारी त्यागी, वे महादार्शनिक, वे आचारांग के महानिर्देशक, वे महान् व्याख्याता, वे सिद्धान्तचक्रवर्ती, वे आध्यात्मिक काव्य के महान् सृजक, वे महापांडित्य-सिक्त-श्रावकहितैषी, वे जगोद्धारक, वे करुणाकर, वे विश्ववन्द्य आचार्य शिरोमणि विद्यासागरजी मुनि महाराज ही हैं। उन्हें मनुष्य तो ठीक, अदृश्य देव, देवांगनाएँ, व्यंतर तक नमोऽस्तु कर धन्य होते हैं। उन्हें सिद्ध/अतिशय तीर्थक्षेत्र अपने संरक्षणार्थ सदा पुकारते रहते हैं और उनके शुभागमन से ही हँसते-मुस्काते हैं।

भयावह बियावान जंगल उनके पावन चरणों से हरित उद्यानों की तरह झूमने नाचने लगते हैं। मरुस्थल की रेत का उनके स्पर्श से जी जुड़ा जाता है। बुन्देलखण्ड की सौधी माटी उनके मुक्त-विहारों से सौभाग्यवती की तरह नत-मस्तक हो अपनी अंजुली से हर वर्ष फसलों के अर्घ्य चढ़ाती है।

वे जहाँ जाते हैं वहाँ अधर्म का अंधकार विलुप्त हो जाता है और धर्म के दीप जगमगाने लगते हैं। नदियाँ, अपने शुष्क स्तनों से पुत्रवती माताओं की तरह, अमृत बिन्दु देने लगती हैं। असामाजिक तत्त्वों की तरह खारे कुएँ, बावली, सेवावृत्ति कर रहे चरित्रवान श्रावकों की तरह, अपने पानी को मीठा कर जन-सेवा में लग जाते हैं। तब किसे न लगेगा कि वे परम पूज्य विद्यासागर हमारे नगर भी पधारें और हमारे क्लान्त मनो को धर्म-वचनों से अभिसिंचित कर हम में वास्तविक चरित्र की प्रभावना करें।

यही है उनका वर्तमान परिचय, यही है उनका वास्तविक भक्ति-गान और यही है उनका बिरद।

शरद पूर्णिमा की रात्रि आश्विन शुक्ल १५, सम्वत् २००३, दिन गुरुवार को ग्राम सदलगा (जिला-बेलगाँव, कर्नाटक) में, प्रातः स्मरणीय माता श्रीमंती जी एवं नर-रत्न पूज्य मल्लप्पाजी जैन के यहाँ जन्म लेने वाले

शिशु का वर्तमान परिचय यही तो है। बिन्दु जैसे सिन्धु बन गया हो। पूर्णिमा का चाँद जैसे सूर्य बन गया हो। जन्म नाम 'विद्याधर' किन्तु शिशुचित मिष्ठ-वाणी के कारण पाँच वर्ष की उम्र से 'तोता' कहलाने लगे। किशोर अवस्था का तोता जितना मधुर गाता बोलता उतना ही नटखट था, पर धार्मिक प्रवचन, धार्मिक अनुष्ठान और धर्मायतन के प्रति अनुकूल प्रवृत्ति भी थी उसमें।

लौकिक शिक्षा के नाम पर हाई स्कूल तक तो पढ़ सके पर फिर मन/आत्मा ने भीतर ही भीतर कोई सत्याग्रह छेड़ दिया, सो शालायी-पढ़ाई बंद कर, धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। मन मुनियों के पग-तलों की ओर खिंचने लगा। सदलगा या उसके आसपास जब भी कोई मुनि-संघ आता, विद्याधर की उपयोगिता वहाँ स्वयमेव प्रारम्भ हो जाती।

२० वर्ष की उम्र में घर छोड़कर वे आचार्यवर्य देशभूषणजी महाराज का सामीप्य पाने जयपुर पहुँचे। कुछ समय उनके पास रहे फिर वे संघ के साथ विहार करते हुए पुनः अपने नगर के समीप श्रवणबेलगोला आ पहुँचे।

देशभूषणजी महाराज दक्षिण-भारत को कुछ अधिक समय देना चाहते थे, अतः विद्याधर को लगा कि किसी दिन उसके माता-पिता वहाँ आकर वापस घर न ले जाये, उन्हें एक आकांक्षा भी थी- वे जल्दी से जल्दी दिगम्बरी जैन दीक्षा धारण करना चाहते थे। अतः एक दिन उनने देशभूषणजी महाराज के चरण छूकर पुनः उत्तर-भारत को प्रस्थान कर दिया और अजमेर अवस्थित मुनिश्री ज्ञानसागरजी के चरणों में पहुँच गये।

ज्ञानसागरजी ने विद्याधर नाम के बाल-योगी में संभावनाएँ देखी और अपना आशीष प्रदान किया।

वर्ष पूरा न हो पाया और एक दिन, ३० जून १९६८ को मुनि श्री ज्ञानसागरजी ने उन्हें मुनि-दीक्षा प्रदान कर दी। वे हो गये मुनि विद्यासागर।

विद्यासागर जैसे मनीषी शिष्य और ज्ञानसागर जैसे ज्ञानी गुरु को देख नसीराबाद (राज.) के जैन समाज के अनुरोध पर दिनांक ७ फरवरी, १९६९ शुक्रवार को गुरु ज्ञानसागरजी को आचार्यपद से विभूषित कर

दिया।

गुरु-सेवा, तत्त्व-चिंतन और अध्यात्म-मनन के साथ विद्यासागरजी श्रमणसंघ में निरन्तर सक्रिय रहे। महान् ग्रंथों के तलस्पर्शी अध्ययन से उनमें पांडित्य का ज्ञानबोध हिलोरें लेने लगा। देखते ही देखते वयोवृद्ध ज्ञानसागरजी महाराज उनमें एक सक्षम गुरु/आचार्य की मूर्ति देखने लगे, जर्जर काया को बिदा देने के उद्देश्य से एक दिन गुरु ज्ञानसागरजी ने अपने आचार्यपद का त्याग किया और परम विद्वान् शिष्य विद्यासागर से आचार्यपद ग्रहण करने का अनुरोध किया। समय की नाजुकता को पहचानते हुए, पूज्य विद्यासागरजी ने गुरु ज्ञानसागरजी से २२ नवम्बर, १९७२ को नसीराबाद में आचार्यपद ग्रहण किया।

गुरु निरंतर दुर्बल हो रहे थे, साइटिका और दमा जैसी बीमारियाँ उनके देह तत्त्व को सता रही थीं, अतः शरीर का उपयोग न देखते हुए उन्होंने एक दिन अपने नये-नवारे आचार्य से समाधि-मरण की दीक्षा हेतु निवेदन किया। शिष्य के शिष्य बने वे उस दिन और देहत्याग के लिये अडिग हो गये। आहार, जल, रसपानादि छोड़कर अपने नव-गुरु विद्यासागर की छत्रछाया में नव-शिष्य ज्ञानसागरजी शिखर यात्रा पर अग्रसर हुए और १ जून, १९७३ शुक्रवार को नसीराबाद नगर में ही विद्यासागर की महान् सेवाओं को सु-पुण्य प्रदान करते हुए, समाधिलीन हो गये। उस शुक्रवार को आत्म-परेवा जब उड़ा तो दिन के १० बजकर २० मिनट हो चुके थे।

गुरुवर की छाया से छूटे आचार्य विद्यासागर स्वतः छायावान हो गये और उनकी छाया तले धीरे-धीरे कई नये, चरित्र और ज्ञान के पौधे फलने-फूलने लगे।

वे परम ज्ञानी विद्यासागर जैन वाङ्मय के अधिकारी विद्वान् के रूप में देश की माटी की गरिमा बढ़ा रहे हैं। अनेको महान् ग्रन्थों का सार्थक अध्ययन करने वाले इस महायोगी ने कुछ अपने पास रख छोड़ने का प्रयास नहीं किया। वे खौर-खौर, दोर-दोर घूमकर जिनवाणी का प्रसाद बाँट रहे हैं। उनके प्रवचन, प्रमेय-बिन्दुओं की तरह हर दिशा में फैल रहे हैं और

ज्ञान के जागरण को अमरत्व प्रदान कर रहे हैं। इतना ही नहीं, आचार्य विद्यासागरजी ने अब तक अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना की है जिनमें 'मूकमाटी' नामक महाकाव्य विश्व की अप्रतिम रचना बनकर साहित्य-संसार और आध्यात्मिक-संसार को गौरवान्वित कर रहा है। उनने प्राकृत-संस्कृत के बीस ग्रन्थों का छन्दबद्ध ललित अनुवाद भी किया है। इन सब के चलते, उनके पाँच मौलिक काव्यसंग्रह, छह संस्कृत शतक संग्रह और बीस प्रवचन-संग्रह जैनाजैन पाठकों को दिशा ज्ञान दे रहे हैं। स्फुट रचनाएँ अलग ही हैं।

वे ध्यान में अजेय हैं। बरसते पानी ने, नदियों की खरेरो ने, श्मशानों के झंझावातों ने उनसे चाहे जब मोर्चा लिया, पर उनका ध्यान भंग नहीं कर सके और संत शिरोमणि जी पल-पल ध्यानरत रहते आये। उनका तप तो पूर्ण सतयुगी है। कलिकाल में ऐसे तपस्वी कहीं मिल जायें विश्वास नहीं होता।

प्रवचन प्रवाह उनका विशिष्ट है, जैसे साक्षात् महामुनि महावीर अपनी परिव्राजक अवस्था में कुछ संबोधन कर रहे हैं।

वे किसी से प्रभावित नहीं होते। सेठ-साहूकारों, पंडितों, नेताओं के इशारों पर अपनी योजनाएं नहीं बनाते, न परिवर्तित करते हैं। सदा समभाव धारण करते हैं। कुबेर और निर्धन, पतित और पावन सब उनकी करुणा एवं कृपा के पात्र हैं। उनके वात्सल्यभाव के छींटे सब पर बराबर पड़ते हैं। साहित्यकारों और कलाकारों को सदा अपनी मुस्कानों से अभिसिंचित करते हैं और उन्हें उद्देश्य की ओर सक्रिय रहे आने की प्रेरणा और वातावरण देते हैं।

वर्तमान साधु-समाज के बीच वे एकमात्र ऐसे आचार्य हैं जो कहीं भी विवादग्रस्त नहीं हैं। उनसे कई साधुओं ने लाभ पाया है।

उनके दर्शनों से पतित-जन पावन होते हैं। वे किसी को बुलाते नहीं, पर उनका आमंत्रण हर हृदय में गूँजता रहता है। वे किसी को भगाते नहीं, शायद इसीलिये जो भक्त उनकी वंदना कर लौटता है तो घर आकर उसे

आभास होता है कि मन तो वहीं उनके चरणों में छोड़ आया है। वर्तमान में देश में उनका संघ सबसे बड़ा हो गया है, १८४ पिच्छिकायें और कमण्डलु जिस डगर से होकर निकल पड़ते हैं, वहाँ के दैन्य, दमन और दकियानूसीपन शांत हो जाते हैं, महामारियाँ विदा ले जाती हैं, अनिष्ट टल जाते हैं, इष्ट मिल जाते हैं। उन्हें नमन कर कौन न अपनी आधि-व्याधि से मुक्त होना चाहेगा? काया के कष्टों से शिथिल, परेशान हुए श्रावकों, त्यागियों को वे ही तो महा-मरण का अमृत दान बतलाते हैं। सच, मरण समाधि की दीक्षा देने में और उनका सिद्धान्त निर्वाह करने-कराने में वे दक्ष है। लोग विनोद में 'समाधि-सम्राट्' कहते हैं।

ऐसा संत हमारे पास है, कौन न अपना सिर उठाकर यह वाक्य कह गौरवान्वित होना चाहेगा। जैन समाज का वास्तविक पुण्य क्या है, वास्तविक संस्कृति और इतिहास क्या है, वास्तविक परिचय क्या है? सतयुगी संत विद्यासागर और उन जैसे कुछ अन्य दिगम्बर संत।